गंगा-पुस्तकमाला का ९३वाँ पुष्प

जीवन-मरण-रहस्य

लेखक

ठा० प्रसिद्धनारायण सिंह बी० ए०, एम्० एल्० सी०

[राजयोग, हठयोग, प्राणायाम, योग की कुछ विभू-
तियाँ, योगत्रयी, योगशास्त्रांतर्गत धर्म, सीधे-
पंडित, संसार-रहस्य आदि के रचयिता]

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार
२६ लाटूश रोड,
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १)] सं० १९९० वि० [सादी ॥)

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ
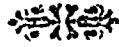
मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

भूमिका

जब से भारतवर्ष का पतन हुआ है, तभी से आर्य-जाति के समस्त गुणों का दिन-पर-दिन ह्रास होता जा रहा है। उसमें अब न तो वह पूर्व-वीरता है, न बल-बुद्धि, न धैर्य, न साहस और न निर्भीकता ही है। जिस देश के ऋषियों ने "एकोऽहं द्वितीयो-नास्ति" की अखंड और अंतिम शंख-ध्वनि की थी, तथा जिस अपने आत्म-स्वरूप के विषय में "नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ; न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।" का अद्वितीय उपदेश दिया था, अब उसी देश के निवासियों को मृत्यु की भयंकर मूर्ति पग-पग पर दिखाई देती है। यदि कहीं धोके में अपनी परछाईं दिखाई पड़ी, तो बस, उन्हें भूत पकड़ा, और वे बीमार पड़े। लाल पगड़ी-धारी पुलिस के सिपाहियों ने ज़रा डाँटा, और काटो तो उनके शरीर में ख़ून नहीं। आज राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन है, वहीं आर्य-जाति के उद्धार पर विचार होनेवाला है, किंतु वे वहाँ नहीं जा सकते, क्योंकि दिशाशूल और भद्रा के पहाड़ सामने ही छाती अड़ाए खड़े हैं, पितृ-घातक का भयंकर समुद्र उमड़ रहा है...। इसी प्रकार इस मिथ्या-मृत्यु के भय ने हमारी आर्य-जाति के ऊपर ऐसा कुठाराघात किया, जिससे वह अपने कर्तव्य से नितांत विमुख हो गई, उसमें अकर्मण्यता का भाव कूट-कूटकर भर गया। ऐसी दशा में देश के प्रत्येक विचारशील पुरुष का हृदय दुःख से व्याकुल हुए बिना कदापि नहीं रह सकता। अस्तु। मैंने भी इसी विचार से कि जिस मृत्यु के भय ने हमारे समाज को अकर्मण्य बनाया, देश को इस शोचनीय अवस्था में ला दिया, वह मृत्यु है क्या वस्तु ?—

अपने प्राचीन ऋषियों के सिद्धांतों पर इस छोटी-सी (जीवन-मरण-रहस्य) पुस्तक की रचना की। यदि देशवासियों का इससे कुछ भी उपकार हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

पुस्तक में पहले हाड़, मांस, रुधिर के लोथड़े (शरीर) की बनावट और उसकी भीतरी क्रियाओं जैसे अन्नपाचन, रुधिर-संचारण, श्वसन, वेदना और कर्म-संचालन आदि तथा क्रियाओं के उद्देश का वर्णन किया गया है। आगे चलकर बतलाया गया है कि इन उद्देशों की पूर्ति देहाणु-समूह किस प्रकार करते हैं, और उनके द्वारा (प्राकृतिक रूप से) हमारे समस्त रोग कैसे अच्छे हो जाते हैं। फिर मानस की प्रेरणा, उसका विकास तथा आत्मा के ऊपरी पट् आवरणों (१ स्थूलशरीर, २ लिंगशरीर, ३ प्राण-शक्ति, ४ प्रवृत्ति-मानस, ५ बुद्धि, ६ आत्म-मानस और ७ आत्मा) का विवेचन करते हुए योग की विभूतियों का दिग्दर्शन कराया गया है। अंत में यह प्रत्यक्ष दिखला दिया गया है कि "मनुष्य सर्वदा रहा है और सर्वदा रहेगा। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह निद्रा है; जिससे अगले दिन जागना पड़ेगा।"

मैं यहाँ पर श्रीमान् माननीय राजा विश्वनाथशरणसिंहजूदेव बहादुर तिलोई-नरेश को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता, जिनकी अपूर्व कृपा से मुझे 'देश-सुधार ग्रंथमाला' के तीन पुष्प (संसार-रहस्य, सीधे पंडित और यह जीवन-मरण-रहस्य) अपने सहृदय पाठकों के भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपनी अल्पावस्था में ही श्रीमान् की ऐसी देश-हितकर साहित्य की अभिरुचि तथा उसकी उन्नति में तन, मन, धन से प्रयत्नशील होनेवाली प्रवृत्ति को देखकर किसका हृदय आनंद से प्रफुल्लित न हो उठेगा ?

काशी,
५ जून, १९२३ } प्रसिद्धनारायण सिंह

समर्पण

शील-सदाचार-निष्ठ, प्रजा-वत्सल, उदार-हृदय
साहित्य-सेवी

श्रीमान् राजा विश्वनाथशरण सिंहजू देव बहादुर

तिलोई-नरेश

के

कर-कमलों में

यह

'जीवन-मरण-रहस्य'

लेखक द्वारा

सादर और सानुराग

समर्पित है

प्रसिद्धनारायण

जीवन-मरण-रहस्य

पहला अध्याय

शरीर की स्थूल बनावट और भीतरी क्रियाएँ

जीवन-मरण-रहस्य जानने की चेष्टा करने के पहले यह आवश्यक होता है कि इस बात को हम जान जायँ कि साधारण रीति से हम जीवन किसे कहते हैं। साधारणतया जीवन उसी दशा को कहा जाता है, जब तक यह शरीर यथासाध्य अपनी सब आवश्यक क्रियाओ को करता हुआ संगठित अवस्था मे वर्तमान रहता है। जब शरीर अपनी आवश्यक क्रियाओ के करने मे नितांत असमर्थ हो जाता है और इस कारण संगठित न रहकर गलने पचने लगता है, तब इसकी मृत्यु की दशा कही जाती है।

हम जब शरीर की बनावट पर दृष्टि डालते हैं, तो पहले हमारे ध्यान में हड्डियो का वह ढाँचा आता है, जिसके सहारे और अवलंबन से रुधिर और मांस का यह लोथड़ा कड़ा और तना हुआ रहता है। यदि हड्डियो का यह ढाँचा न रहता, तो यह शरीर या मांस का लोथड़ा केचुआ और जोंक की भाँति लुंड-मुंड हो जाता। हड्डी का वह ढाँचा नीचे से ऊपर तक

लगातार एक रस नही है, पर अनेकों रूप के हड्डियों के खंड स्थान-स्थान पर ढीले जुटे हुए हैं, जिससे शरीर खड़ा, बैठा, सोया, उद्यम करता और विश्राम करता हुआ सब दशाओं मे रह सके। हड्डियाँ सब ठोस ही नही हैं, आवश्यकतानुसार कोई खंड ठोस, कोई पोला, कोई लंबा, कोई चपटा आदि अनेक प्रकार के है। अब इन हड्डियो के भीतर किसी-किसी खंड मे भेजा या गुद्दी है, और कोई-कोई खंड विना भेजे के हैं। हड्डियो के इस ढाँचे के आश्रित मांस चढ़ा हुआ है। मांस की तह कहीं मोटी, कही पतली है। मांस के ऊपर चमड़ा है। अब ऐसी स्थूल बनावटवाले शरीर को अपने काम करने के लिये यंत्रो की आवश्यकता है। इसके आवश्यक कामो में पहले इसमे अपने आपको पालन और पोषण करने की क्रिया है। इसके लिये मुँह का द्वार भोजन करने तथा पानी पीने और नासिका का द्वार साँस लेने के लिये बना है। जो मुँह से भोजन किया जाता और पानी पिया जाता है, वह मुँह से लार मे मिलता हुआ कंठ मे होकर पेट की उस थैली में पहुँचता है, जिसे आमाशय कहते हैं। यहाँ आमाशय की थैली की ऐसी बनावट है कि भोजन किए हुए पदार्थों में उसी थैली से तेज़ाब निकल-निकलकर मिलते रहते हैं, और पदार्थों का इधर-उधर उलट-पुलटकर ऐसा मंथन होता है कि खाया हुआ भोजन एक प्रकार की लुगदी के रूप में बन जाता है। इसी को शरीर की पाचन-क्रिया कहते हैं। जब यह क्रिया

समाप्त हो जाती है, तो यह लुगदी आमाशय के निचले भाग में बने हुए एक द्वार से पतली अँतड़ियों में पहुँचती है। इन पतली अँतड़ियों से भी एक प्रकार का तेजाब-सा द्रव निकलकर लुगदी में मिलता जाता है। पतली अँतड़ियों से लुगदी एक द्वार के मार्ग से मलाशय में पहुँचती है। यहीं पर उस लुगदी से शरीरोपयोगी रस निकाल लिया जाता है, और शेष सीठी छोड़ दी जाती है, जो मल के रूप में बाहर निकल जाती है। रस महीन नलियों द्वारा यकृत में छनता-पकता हुआ कई स्थानों से घूमता-घामता फेफड़ों की कोठरियों में ऑक्सीजन से मिलकर हृत्पिंड की कोठरी में शुद्ध रुधिर बनकर आता है। वह रुधिर हृत्पिंड से रुधिरोपवाहक धमनियों द्वार सारे शरीर में पहुँचता है और सर्वत्र आवश्यकतानुसार पोषण और मरम्मत की सामग्री पहुँचाकर शरीर का पोषण और उसकी मरम्मत करता है। फिर रुधिरोपवाहक नालिकाओं अर्थात् नसों द्वारा वापस आता है, और सारे शरीर की रद्दियात और निकम्मे अणुओं को ले आकर हृत्पिंड की दूसरी कोठरी में भरता है। इस कोठरी से दूषित रुधिर फेफड़ों की अनगिनत नन्हीं-नन्ही कोठरियों में पहुँचकर बँट जाता है। श्वास लेने से बाहर की शुद्ध हवा नाक के बालों और द्रव पदार्थों द्वारा शुद्ध होती हुई आकर फेफड़ों की इन अनगिनत कोठरियों में पहुँचती है। अब बाहर से आई हुई शुद्ध हवा और शरीर के सब भागों से आए हुए

दूषित रुधिर का फेफड़ों की इन्हीं नन्ही-नन्ही कोठरियो में मेल होता है। दूषित रुधिर अपने दूषण हवा को दे देता है, और हवा अपना ऑक्सीजन इस रुधिर को दे देती है। इससे रुधिर फिर साफ होकर हृत्पिंड को जाता है, और हवा गंदी होकर निःश्वास द्वारा बाहर निकल आती है। हृत्पिंड से शुद्ध रुधिर फिर रुधिरोपवाहक शिराओ द्वारा सारे शरीर मे पोषण और मरम्मत की सामग्री पहुँचता है और रुधिरोपवाहक नसो द्वारा शरीर की रद्दियात लेकर वापस आता है। इसी प्रकार रुधिर का संचालन हुआ करता है।

हम ऊपर दो प्रकार के यंत्रो की बनावट और उनकी क्रियाएँ देख आए। एक तो अन्न-पाचन और रस तथा रुधिर-निर्माण, दूसरे रुधिर-संचालन। इसी रुधिर-संचालन के साथ-साथ हमने कुछ थोड़-सा श्वास-प्रश्वास और इसके द्वारा रुधिर की शुद्ध और ऑक्सीजन के वितरण के विषय में भी कुछ जानकारी प्राप्त कर ली। अब शरीर मे एक मुहकमा और है, जिसे शरीर का शासन-विभाग कह सकते हैं। इस मुहकमे का मूल-स्थान मस्तिष्क है, जहाँ खोपड़ी मे भेजा या गुद्दी भरे रहते है। उसी से एक गुद्दी से भरी हुई नलिका निकलकर रीढ़ की हड्डी मे होती हुई नीचे आकर दोनो जाँघो के जोड़ के पास समाप्त होती है। इसी मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी अर्थात् मेरु-दंड से निकलकर अनगिनत

नाड़ियाँ शरीर के सब अंगो, अवयवो, प्रत्यंगों और इंद्रियों मे जाल की भाँति फैली हुई हैं। शरीर का कोई भाग ऐसा नहीं है, जहाँ ये नाड़ियां और रुधिर-संचार की धमनियाँ न पहुँची हो। रुधिर-संचार की धमनियाँ तो शुद्ध रुधिर बाँटती और अशुद्ध वस्तुएँ बटोरती हैं, और ये नाड़ियाँ शरीर के बाहर और भीतर की घटनाओ के ज्ञान को मस्तिष्क और शासन-विभाग के अन्य थानो पर पहुँचाती हैं, वैसे ही मस्तिष्क और अन्य स्थानो से क्रिया की प्रेरणा को शरीर के प्रत्येक अंग में पहुँचाती है, जिससे शरीर का वह अंग आकुचित और प्रसारित होकर क्रिया करता है।

उदाहरण के लिये मान लीजिए कि पैर मे मच्छड़ ने काटा। वहाँ से इसकी सूचना ज्ञान-नाड़ी या ज्ञान-तंतु द्वारा मस्तिष्क को मिली। वहाँ से कर्म-नाड़ी या कर्म-तंतु द्वारा आज्ञा हाथो पर पहुँची। हाथ ने आकुचित और प्रसारिता होकर मच्छड़ को हटा दिया और उस स्थान को सहला दिया। ऐसे ही शरीर के भीतर आमाशय में पानी की कमी हुई, वहाँ से ज्ञान या वेदन-तंतुओ द्वारा मस्तिष्क को सूचना हुई, मस्तिष्क से सूचना गले को हुई, वहाँ पानी की माँग होने लगी—अर्थात् प्यास लग गई। इसी प्रकार आँख की पुतलियो पर किसी रंग या रूप का प्रतिबिंब पड़ा, तो वहाँ से वेदन-तंतुओ द्वारा सूचना मस्तिष्क तक पहुँच गई। इस प्रकार यह मुहकमा शरीर मे वेदन और क्रिया-संचालन का काम करता है।

अब इसके उपरांत इंद्रियाँ हैं। इंद्रियाँ भी दो प्रकार की हैं—एक ज्ञानेंद्रियाँ और दूसरी कर्मेंद्रियाँ। आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा ये पाँच ज्ञान-इंद्रियाँ हैं। कर्मेंद्रियाँ तो अनेकों हैं, पर उनमें हाथ, पाँव, वाणी आदि प्रधान हैं। इन इंद्रियो की बनावट बड़ी ही सूक्ष्म, विचित्र और बारीक हैं। एक आँख की बनावट के अनुशीलन मे बहुत-से वैज्ञानिक अपना सारा जीवन लगा देते हैं, तो भी उसे पूरा नहीं समझ पाते। ऐसी ही दशा कान, नाक आदि की भी है। इन इंद्रियो से मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी अर्थात मेरु-दंड से नाड़ियाँ लगी हैं, जो वेदनो को पहुँचाया करती हैं, और वहाँ से कर्मेंद्रियो तक आज्ञाएँ ले जाती है।

अब देखना चाहिए कि शरीर के सब अंगो की बनावट एक ही नही है। एक अंग की बनावट से दूसरे अंग की बनावट मे बड़ा अंतर है। हड्डियाँ मांस से भिन्न हैं, हड्डियो मे अनेक रूपांतर हैं। मांस-पेशियाँ भी भिन्न-भिन्न स्थान की भिन्न-भिन्न बनावट की हैं। अँतड़ियो की रचना और ही प्रकार की है। धमनियाँ उससे भी न्यारी हैं। हृदय, यकृत, तिल्ली, गुर्दे सब बनावट मे भिन्न-भिन्न हैं। फेफड़ो की रचना सब से न्यारी है। नाड़ियाँ, मस्तिष्क और इंद्रियाँ सब रंग, रूप, गठन और बनावट मे एक दूसरे से भिन्न हैं। सब अंगों में तत्त्वो का समावेश भी एक ही मात्रा मे न होकर भिन्न-भिन्न मात्राओ मे है।

इस शरीर की वनावट पर सविस्तर ध्यान दिया जाय, और उसका विस्तार से वर्णन किया जाय, तो बड़ी भारी पोथी इसी की हो जाय, तो भी विपय समाप्त न हो सके। यहाँ पर हमारा उद्देश शरीर की वनावट ही का दिखलाना नहीं है, किंतु अन्य कुछ है। इसलिये हमने शरीर की वनावट और क्रियाओं का केवल दिग्‌दर्शन-मात्र कर दिया है, जिससे यह जानकारी हो जाय कि शरीर की ऐसी वनावट में अनेक क्रियाएँ लगातार हुआ करती हैं, जिससे शरीर जीवित रहता है।

दूसरा अध्याय

शरीर की भीतरी क्रियाएँ और उनके उद्देश

ऊपर शरीर की बनावट के साथ-साथ हम शरीर के कुछ अवयवो और उनकी क्रियाओं पर शीघ्रता से दृष्टिपात कर आए है। उनके विचार से, देखने मे आता है कि शरीर की क्रियाएँ प्रधानतः चार विभागो मे बाँटी जा सकती हैं—

(१) अन्न-पाचन-क्रिया—इससे खाया हुआ अन्न आमाशय मे पचता है, पतली अँतड़ियो मे भी रस निर्माण के निमित्त क्रियाएँ होती है और मलाशय मे जाकर रस मल से अलग कर लिया जाता है। रस तो ऊपर शरीर मे पहुँचता है, और मल नीचे के द्वार से बाहर निकाल दिया जाता है। इस क्रिया से अन्न और जल के द्वारा प्राण शरीर में संचालित होता है।

(२) रुधिर-संचारण-क्रिया—इससे धमनियो द्वारा रुधिर सारे शरीर मे पहुँचता है। शरीर के अंगों की आवश्यक सामग्री इसी के द्वारा अपने-अपने स्थान पर पहुँचती है। इसी के द्वारा पहुँचाई हुई सामग्री से कहीं हड्डी बनती और मरम्मत होती है, कही मांस। इसी के द्वारा मज्जा, नाड़ी, भेजा, मस्तिष्क, इंद्रियाँ आदि सब अवयव बनते और मरम्मत हुआ करते हैं। यही क्रिया प्रत्येक अंग, प्रत्येक अवयव और

शरीर के प्रत्येक भाग से निकम्मे अंशो को इकट्ठा कर लाती है और फेफड़े, इंद्रियो और त्वचा के छिद्रो द्वारा मल-रूप मे निकाल देती है। आँख, कान, नाक और मुँह से भीतरी मैल निकला करती है। वैसे ही पसीना और देह-वाष्प द्वारा भी त्वचा के छिद्रो से मैल निकला करता है।

(३) श्वसन-क्रिया—इससे बाहर की शुद्ध हवा भीतर फेफड़ो में जाती है। वहाँ अपने ऑक्सीजन को रुधिर के हवाले कर देती है, और रुधिर के मल को आप लेकर निःश्वास द्वारा बाहर निकल आती है। हवा का ऑक्सीजन रुधिर के साथ सारे शरीर मे भ्रमण करता है, और जहाँ आवश्यकता होती है, वहाँ काम मे लग जाता है। इसी ऑक्सीजन के साथ अधिकांश प्राण शरीर मे प्रवेश करता और संचालित होता है। इसीसे श्वास द्वारा प्राणायाम करके योगी लोग अपने शरीर मे प्राण संचय करते है। यही प्राण शरीर के प्रत्येक अंगो मे शक्ति का काम देता है।

(४) वेदन और कर्म-संचालन-क्रिया—यह नाड़ी-तंतुओ द्वारा होती है, जैसा कि ऊपर कह आए है। शरीर के भीतर जितनी क्रियाएँ होती हैं, सबकी प्रेरक यही क्रिया है। जसे किसी कारखाने मे जाकर देखिए, जहाँ एंजिन द्वारा मशीनें अर्थात् कलें चलती हो, तो वहाँ आप पावेंगे कि एंजिन से शक्ति निकालकर अनेक यंत्रो में पहुँचाई जाती है, और उन यंत्रो से अनेक काम हुआ करते हैं। वैसे ही इस वेदन और कर्म-

संचालन-क्रिया द्वारा अन्न-पाचन, रुधिर-संचालन और श्वसन आदि सब क्रियाएँ प्रेरित हुआ करती हैं। वेदन और कर्म-संचालन-क्रिया अपने तो अन्य क्रियाओ से, प्रधानतः श्वसन-क्रिया से शक्ति प्राप्त करती है, और उलटकर सब क्रियाओ को प्रेरित किया करती है।

ये तो प्रधान क्रियाएँ हैं। इनके अंतर्गत और अतिरिक्त बहुत-सी छोटी-छोटी क्रियाएँ, जैसे मल-निर्वासन, रस-निर्माण, रुधिर का साफ करना, अवयवो की मरम्मत करना आदि हुआ करती हैं।

यह शरीर यंत्रो की क्रियाओ का घर है। यद्यपि देखने में उतनी क्रियाएँ प्रकट नहीं दिखाई देती, परंतु इसमे तिल-भर भी ऐसा स्थान नही है, जहाँ लगातार क्रिया न होती हो। सोते हुए मनुष्य को देखकर अनाड़ी आदमी कहेगा कि यह मनुष्य सो रहा है; इसका शरीर कुछ काम नहीं करता। परंतु आप देखेंगे कि सोती दशा मे भी उसके श्वास चल रहे हैं; हृदय पर हाथ रखिएगा, तो हृदय भी धड़कता मिलेगा; हृदय के धड़कने का अर्थ हृदय की पिचकारी द्वारा शरीर मे रुधिर-संचालन करने का है। उदर मे पाचन-क्रिया भी हो रही है, क्योंकि जब रात को मनुष्य भोजन करके सोता है, तब सोई दशा मे यदि अन्न-पाचन न होता, तो प्रातःकाल आपको वैसा ही प्रतीत होता, जैसा रात को भोजन के उपरांत प्रतीत होता था, पर वैसा न प्रतीत होकर अन्न

पचा हुआ जान पड़ता है। क्यो ? रात्रि-भर पाचन-क्रिया होती रही।

शरीर की इन अनेक क्रियाओ के पूरे रूप से जहाँ और जब संपादित होने में त्रुटि होती है, तहाँ और तब रोग की नींव पड़ जाती है। ये सारी क्रियाएँ जब बंद हो जाती हैं, तब वही मृत्यु की दशा कही जाती है।

हम देखते है, तो इन भिन्न-भिन्न क्रियाओ के उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न हैं। पाचन-क्रिया का एकमात्र उद्देश्य यह है कि भोजन किया हुआ अन्न पचकर इस योग्य हो जाय कि उससे शरीर के उपयोगी रस निचोड़े जा सकें। इसी उद्देश्य से आमाशय की थैली के भीतरी भागो में जो कोमल-कोमल काँटो की भाँति मांस के सूत्र निकले होते हैं, उनसे एक प्रकार का तेज़ाव-सा द्रव निकलकर उस खाए हुए पदार्थ मे मिलने लगता है। आमाशय मे भुक्त अन्न इधर-उधर उलट पुलटकर इतना मर्दित और मथित होता है कि पच जाता है। यह पाचन-क्रिया केवल आमाशय ही मे न प्रारंभ होकर मुँह ही से प्रारंभ-होती है। भोजन के मुंह मे जाते ही मुँह के भीतरी अंगो के चारो ओर से एक प्रकार का द्रव स्रवने लगता है। जिह्वा जितनी ही उस अन्न को इधर-उधर उलटती-पलटती है, और दाँत जितना ही अधिक उसे कूँचते और पीसते हैं, मुँह से उतनी ही अधिक लार निकलकर उसमें मिलती जाती है। पाचन मे यह मिली हुई लार बहुत ही उपयोगी होती है।

इस प्रकार मुँह से लेकर आमाशय, पतली अँतड़ियाँ और मलाशय तक अन्न का मर्दन और उसमें भिन्न-भिन्न द्रवों का मिश्रण हुआ करता है। इन सब क्रियाओ का एक उद्देश्य यही रहता है कि जिससे अन्न पचकर ऐसा हो जाय कि उसमें से शरीरोपयोगी रस निचोड़ा जा सके। अब पतली अँत-ड़ियाँ और मलाशय दो काम करती हैं—एक तो भिन्न-भिन्न द्रव-तेज़ाबो को निकालकर भिन्न-भिन्न स्थानो मे भेजती है कि ये तेजाब संचित रहे और आगामी अन्न के पाचन में काम दे। दूसरे, रस निचोड़कर रुधिर बनने के लिये यकृत मे भेजती है। इतनी क्रिया हो जाने पर मलाशय मल को निचले द्वार से बाहर फेक देने का यत्न करता है।

अब यकृत की क्रिया पर ध्यान दीजिए। इसका उद्देश्य रस से पित्त निकालकर उसे पित्त की थैली मे भरना, और शुद्ध रुधिर को साफ करके फेफड़ों में भेजना होता है। फुप्फुस या फेफड़े का उद्देश श्वास द्वारा आई हुई हवा से ऑक्सीजन अर्थात् प्राण-प्रद वायु को निकालकर रुधिर में भरना, और रुधिर के विकारों को निकालकर हवा से भरना होता है। फुप्फुस या फेफड़े से जो धमनियाँ हृत्पिड को गई हैं, उनका उद्देश स्वच्छ प्राण-प्रद वायु से मिश्रित रुधिर को हृत्पिड मे पहुँचाना होता है। हृत्पिड से निकलकर जो धम-नियाँ सारे शरीर में फैली है, उनका उद्देश शुद्ध रक्त को सारे शरीर मे वितरण करना होता है। रुधिर-वितरण की क्रिया

वड़ी ही पेचीदा है। इन धमनियों मे रुधिर का जो प्रवाह होता है, उसमे से रुधिर के कण निकल-निकलकर शरीर में सब जगह लग जाते है, जहाँ उनकी आवश्यकता है। जहाँ हड्डी के वनने या मरम्मत होने की आवश्यकता है, वहाॅ उसी के अनुकूल कण निकलकर हड्डी मे लगते है। जहाँ मांस की आवश्यकता है, वहाॅ मांस के अनुकूल कण रुधिर से निकलकर लग जाते हैं। इसी प्रकार जहाॅ मज्जा, चर्वी, या गुद्दी या भेजा की आवश्यकता है, वहाॅ उनके अनुकूल कण जाते हैं, और शेप कण अपनी आगे की गति करते हैं। वापसी मे रुधिर कणो को लगाता नहीं, किंतु रद्दी और वेकार कणो को खींच-खींचकर अपने मे लेता आता है। इस प्रकार उन कणो को साफ होने और निकालकर फेक दिए जाने के लिये फिर फुफ्फुस मे ला छोड़ता है।

इन भिन्न-भिन्न उद्देशो के स्पष्ट ज्ञान के लिये वेदन और कर्म-संचार-नाड़ियो पर ध्यान देना आवश्यक है। वेदन-नाड़ियाॅ केवल वेदन को मस्तिष्क या मेरु-दंड तक पहुॅचाती हैं, और कर्म-नाड़ियाँ केवल क्रिया की प्रेरणा को मस्तिष्क या मेरु-दंड से अभीष्ट स्थान को पहुॅचाती हैं।

अव इंद्रियो और उनकी वेदन-नाड़ियो के विशेप उद्देशो पर ध्यान दीजिए। आँख की इंद्रिय केवल दृश्य पदार्थ को ग्रहण करेगी। यही इसका उद्देश है। शब्द और गंध तथा स्वाद से आँख की इंद्रिय से कुछ भी प्रयोजन नहीं। वैसे ही

कान की इंद्रिय का केवल शब्द ग्रहण करना उद्देश है; दर्शन, स्वाद और गंध से कुछ मतलब नहीं। स्पर्शेंद्रिय को केवल स्पर्श से काम है, अन्य से प्रयोजन नहीं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अवयवों और भिन्न-भिन्न क्रियाओं के उद्देश भिन्न-भिन्न और एक दूसरे से बिल्कुल ही पृथक् हुआ करते हैं।

इस भेद, इस पृथक्ता और इस अनेकता में भी एकता व्यापक है। अपने आप में तो ये क्रियाएँ और ये उद्देश पृथक्-पृथक् हैं, परंतु जब सबको एक में मिला दीजिए, तो एक जीव की पृथक्-पृथक् सेवाएँ ये सब कर रही हैं।

यदि आप किसी जेब-घड़ी को खोलकर देखें, तो उसमें नाना प्रकार के कील, काँटें, चक्कर, पहिए, लंबे, टेढ़े, सीधे अनेक प्रकार के अवयव हैं। हरएक अवयव का उद्देश भिन्न-भिन्न है, और उसी उद्देश से वह अवयव गति कर रहा है। उस विशेष उद्देश को वह अवयव पूरा न कर सका, तो घड़ी या तो ग़लत समय बताने लगी (बीमार हो गई) अथवा बंद हो गई (मर गई)। पर जैसे घड़ी के पुर्ज़ों के भिन्न उद्देशों और भिन्न क्रियाओं का एक उद्देश समय बताना होता है, वैसे ही शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव भिन्न-भिन्न उद्देशों से, भिन्न-भिन्न क्रियाएँ करते हुए, सम्मिलित रूप से, जीवन का एक उद्देश बनाए रहना रखते हैं। अनेकता, भेद और पृथक्ता में भी एकता है।

तीसरा अध्याय

उद्देशों के पूर्तिकर्ता

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि इतनी पेचीदा क्रियाओं का इतने पेचीदा उद्देशों के साथ पूर्ति करनेवाला कौन है ? हम तो अपने शरीर के भीतर की इन क्रियाओं को नहीं करते, यह बात तो निश्चय है। हमारे लिये तो इनका समझना ही पहले बड़ी कठिन बात है, करना तो दूर रहा। दूसरे किसी कारीगर को शरीर मे प्रविष्ट होकर करते हुए न तो हम अपनी आँखों से देखते हैं, और न विज्ञान ही के इतने सूक्ष्म यंत्र बने हैं, जिसके द्वारा वह कारीगर देखा जाय। ईश्वर-भक्त लोग कहते हैं कि ईश्वर करता है। नास्तिक लोग कहते हैं कि प्रकृति आप-से-आप करती है। चाहे ईश्वर करे, चाहे प्रकृति करे, पर इतना ही कहने से तो काम चलता नहीं कि ईश्वर अथवा प्रकृति द्वारा ये क्रियाएँ होती हैं, जब तक समझा न दिया जाय कि कैसे ये क्रियाएँ होती हैं। क्या विज्ञान हमे आगे और सहायता न देगा ? हमारी मोटी बुद्धि तो काम नहीं देती। विज्ञानियों की सूक्ष्म बुद्धि का सहारा लेना ही पड़ेगा। उच्च विज्ञान कहता है कि जिस प्रकार जड़ पदार्थ परमाणुओं (Atoms) से बने हैं, वैसे ही देह सब

देहाणुओ (Cells) से बने हैं। इन देहाणुओ मे भी जीव रहता है।

चेतनावादियो का तो यह मत है कि जड़ पदार्थों के परमाणुओ मे भी जीव है, जो रासायनिक आकर्षण और अपकर्षण द्वारा अपनी प्रीति और घृणा का द्योतन करता है। पर हम अभी इतनी दूर तक नही जाते। अभी हम जड़वादियों की भाँति परमाणुओ को निर्जीव ही मान लेते हैं, परंतु देहाणुओ (Cells) को तो विवश होकर सजीव मानना पड़ता है, क्योकि ये जीवन के अनेक चिह्नो का द्योतन करते हैं, जो आगे चलकर विदित होगा।

देहाणु के जीव थोड़ा विकास पाए हुए चैतन्य मानस के अल्प अंश को धारण करते है, जिसकी चेतना से प्रत्येक देहाणु अपना कार्य उचित रीति से करता है।

शरीर के देहाणुओ मे तीन तत्त्व होते हैं—(१) द्रव्य, जिसे वे मनुष्य के खाए हुए अन्न से प्राप्त करते है, (२) प्राण अर्थात् जीवन-शक्ति, जिससे वे कार्य करने में समर्थ होते हैं, और जिसे वे हमारे खाए हुए अन्न, पेए हुए पानी और साँस ली हुई हवा से लेते हैं और (३) चेतना वा चित्त, जो सर्वव्यापक मन से लिया गया है।

जैसा हम ऊपर कह आए हैं, प्रत्येक जीवित शरीर नन्हे-नन्हे देहाणुओ का समूह है। यह बात शरीर के प्रत्येक अंग के संबंध में सही है। कड़ी-से-कड़ी हड्डियो से लेकर

कोमल-से-कोमल रेशे तक, दाँत की हड्डी से लेकर आर्द्र झिल्ली के अत्यंत कोमल भागो तक सब इन्हीं देहाणुओं से बने हैं। इन देहाणुओं की भिन्न-भिन्न शक्लें होती हैं, जो इनके विशेष उद्देशो तथा क्रियाओं के अनुकूल होती हैं। प्रत्येक देहाणु सब प्रकार से पृथक्-पृथक् व्यक्ति होते है, परंतु ये चैतन्य देहाणु अपने अफसर देहाणु-समूह के चैतन्य मानस के वशवर्ती होते हैं। जैसे व्यक्तिगत देहाणु देहाणु-समूह के मानस का वशवर्ती होता है, वैसे ही छोटा देहाणु-समूह-मानस बड़े देहाणु-समूह-मानस मे रहता है। और, अंत मे मनुष्य का केंद्रस्थ मन सबके ऊपर शासन रखता हैं। मनुष्य के इस केंद्रस्थ मन को, जो शरीर के सब देहाणु-समूहो के मानस पर शासन रखता है, प्रवृत्ति-मानस (Instinct) कहते है।

ये नन्हे-नन्हे देहाणु सर्वदा काम मे लगे रहते हैं। शरीर के सब कर्तव्यो का पालन करते हैं। प्रत्यक के जिम्मे अलग-अलग काम होता है, जिसे वे अपने योग्यतानुसार पूरा करते रहते है। कुछ देहाणु फालतू रहते है, जो आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं, और अकस्मात् जो कार्य आ जाय, उसे करने के लिये तैयार रहते है। अन्य देहाणु क्रियाशील या कामकाजी होते हैं और नाना प्रकार के द्रवो और तेजाबों को बनाया करते हैं, जिनकी आवश्यकता देह की भिन्न क्रियाओं मे पड़ा करती है। कुछ देहाणु एक स्थानीय होते हैं; जो दूसरे आज्ञा की प्रतीक्षा में स्थायी रहते हैं, पर आज्ञा

पाते ही गमन कर देते हैं। कुछ देहाणु सर्वदा यात्रा किया करते हैं; इनमे से कुछ यात्रा करते ही काम करते हैं, और कुछ अंतर दे-देकर यात्रा करते है। इन यात्री अणुओं मे कुछ तो भार-वाहक होते हैं, कुछ यात्रा किया करते हैं और मार्ग मे जहाँ आवश्यकता देखते हैं, वहाँ कार्य करके फिर आगे बढ़ते है; कुछ सफाई के काम मे लगे रहते हैं; कुछ के जिम्मे पुलिस का काम रहता है। देहाणुओ का जीवन, यदि उनके कुल समूहों पर दृष्टि डाली जाय, तो एक उपनिवेश की ऐसी गवर्नमेंट के समान दिखाई पड़ता है, जो सहकारिता और सहयोगिता के सिद्धांतो पर चलाई गई हो। प्रत्येक देहाणु अपने कार्य को समूह-भर के लाभ के लिये करता है, प्रत्येक अणु सबकी भलाई के लिये काम करता है, और सब मिल-कर परस्पर भलाई का काम करते हैं। नाड़ी-जाल के देहाणु शरीर के प्रत्येक भाग की खबर मस्तिष्क को पहुंचाते, और मस्तिष्क की आज्ञा शरीर के प्रत्येक आवश्यक भागों में पहुँचाते हैं। ये तारबर्क़ी के जीवित तार हैं। नाड़ियाँ नन्हे-नन्हे देहाणुओ से बनी हुई हैं। इन देहाणुओ मे सूँड़ के सदृश कुछ भाग निकला रहता है, एक की सूँड़ दूसरे को, और दूसरे की तीसरे को स्पर्श किए रहती है। इस प्रकार शृंखला बन जाती है, और इसी शृंखला द्वारा प्राण गति करता रहता है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर मे लाखों-करोड़ों देहाणु भार-

वाहक, चलते कामकाजी, पुलिसमैन और सिपाही आदि का काम किया करते हैं। यह अनुमान किया गया है कि एक घनइंच रुधिर मे कम-से-कम ७५ अरब केवल लाल देहाणु हैं। औरों के लेखे को छोड़िए, यह बड़ी विस्तृत जाति है।

रुधिर के लाल देहाणु जो भार-वाहक होते है, वे धमनियों और शिराओ में बहा करते हैं, फेफड़ों से ऑक्सीजन ले-लेकर शरीर के अंगों और प्रत्यंगों में शक्ति भरने के लिये पहुँचाया करते हैं। जब ये रुधिर के प्रत्यावर्तन के समय वापस आते हैं, तो देह-यंत्र के निकम्मे द्रव्यों को लेते आते हैं, जिन्हें फेफड़ा बाहर फेंक देता है। अन्य देहाणु शरीर के अंगो को बनाते और मरम्मत करते हैं।

रुधिर मे लाल अर्थात् भार-वाहक देहाणुओं के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के देहाणु होते हैं। इनमे पुलिसमैन और सिपाही बड़े ही मनोरंजक होते हैं। इन देहाणुओं का कार्य यह है कि ये देह-यंत्र को उन कीटाणुओ (Bacteria and germs) से सुरक्षित रक्खें, जिनसे शरीर मे बीमारी या पीड़ा पहुँचने की आशंका हो। ज्यो ही कोई पुलिस-देहाणु ऐसे हानिकारक कीटाणु को पाता है, त्यो ही वह इससे लिपट जाता है, और इसे निगल जाने की चेष्टा करता है। यदि यह शत्रु कीटाणु प्रबल हुआ, तो वह देहाणु अन्य देहाणुओं को अपनी सहायता के लिये बुलाता है, और यह सम्मिलित

सेना उस कीटाणु को पकड़-पकड़ देह-यंत्र के किसी छिद्र के पास ले जाती है और उसे बाहर निकाल देती है। फोड़े-फुंसियाँ आदि इसी प्रकार के कीटाणुओ के निकाले जाने के उदाहरण है, जहाँ ये शरीर-यंत्र के पुलिसमैन विषैले कीटाणुओ को निकालते हैं।

रुधिर के लाल कीटाणुओ को बहुत काम करना पड़ता है। वे शरार के अगों मे ऑक्सीजन पहुँचाते हैं। वे अन्न से ग्रहण किए हुए पोषण-रस को शरीर के उन अंगो मे पहुँचाते हैं, जहाँ नई रचना या मरम्मत के लिये इसकी आवश्यकता होती है। वे पोषण से उन्ही तत्त्वो को खीच लते हैं, जिनसे आमाशयिक द्रव, लार, पेनक्रिआटिक द्रव (Pancreatic juice), पित्त, दूध इत्यादि बनते हैं, और फिर इन पदार्थों को कार्य्य के अनुकुल उचित परिमाण में मिलाते है। वे उसी प्रकार हज़ारो काम करते है और काम मे लगे रहते हैं, जैसे चीटियाँ करती हैं। पूर्वीय आचार्य बहुत दिनो से इन देहाणुओ को जानते और इनकी क्रियाओ के विषय में अपने शिष्यो को शिक्षा देते आए है। पश्चिमी विज्ञान अब इन्हे जानने लगा है, और आशा है, आगे वह इसका और भी बृहत् और सुविस्तृत वर्णन करे।

हम लोगो के जीवन के प्रत्येक क्षण मे ये देहाणु उत्पन्न हुआ और मरा करते हैं। ये देहाणु खूब बढ़कर फिर अनेक भागो में विभक्त हो जाने के कारण दूसरे देहाणुओ

को जन्म देते है। पहला देहाणु फूलने लगता है, और फूलते-फूलते दो भागो में हो जाता है, तथा बीच में जोड़नेवाली कसर रहती है, फिर यह कटि टूट जाती है, और एक देहाणु के स्थान मे दो देहाणु हो जाते हैं। फिर नया देहाणु बढ़कर दो भागों मे विभक्त होता है। इस प्रकार क्रिया बराबर जारी रहती है।

ये देहाणु शरीर को अपने आप नया बनाए रखने की क्रिया करने के लिये समर्थ बनाए रखते हैं। मानव-शरीर का प्रत्येक भाग लगातार परिवर्तित हो रहा है और इसके रेशे बदल जाया करते हैं। हमारे चमड़े, हड्डियाँ, बाल, मांस-पेशियाँ इत्यादि सबमे अनवरत मरम्मत हुआ करती है, और ये ठीक बनाई जाया करती हैं। हमारे नखो के नए हो जाने मे क़रीब-क़रीब चार महीने लगते हैं। चमड़े के नए होने में चार सप्ताह लगते है। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग लगातार रद्दी हुआ करता, और नया बना करता है; मरम्मत भी जारी रहती है। ये नन्हे-नन्हे देहाणु कारीगर उन मज़दूरो के दल हैं, जो इस आश्चर्य-जनक कार्य को किया करते हैं। ये नई सामग्री जुटाया करते हैं, और पुराने निकम्मे हानिकारक कणो को शरीर-यंत्र के बाहर किया करते हैं।

मानव-शरीर में विकारो और क्षतों को इन्हीं देहाणुओं द्वारा चंगा करने की भी शक्ति है। किसी घाव के अच्छे होने के उदाहरण पर विचार कीजिए। देखिए, क्षत कैसे पूर्ण

होता है। कल्पना कीजिए, किसी मनुष्य का शरीर जख्मी हुआ है, अर्थात् कहीं कट गया है या किसी बाहरी चीज के लगने से फट गया है। रेशे, पंछा और रुधिर बहाने की नलियाँ, द्रवस्रावी, मांस-खंड, मांस-पेशियाँ, नाड़ियाँ और कभी-कभी हड्डियाँ खंडित हो जाती हैं और उनकी शृंखला टूट जाती है। ज़ख्म से रुधिर बहने लगता, उसका मुँह विवृत हो जाता, और पीड़ा होने लगती है। नाड़ियाँ इस समाचार को मस्तिष्क में पहुँचाती, और तुरंत सहायता पाने के लिये पुकार मचाती हैं। मस्तिष्क से इधर-उधर सहायता के लिये आज्ञाएँ निकलने लगती हैं। मरम्मत करनेवाले देहाणुओं की उपयुक्त सेना झपटकर ख़तरे के मुक़ाम पर पहुँचती हैं। इस अर्से मे रुधिर की ज़ख्मी नलियों से रुधिर बह-बहकर भीतर घुसे हुए बाहरी पदार्थों को धो बहाता है, या धो बहाने की चेष्टा करता है। ये बाहरी पदार्थ धूल, मैला और कीटाणु इत्यादि हुआ करते हैं। यदि ये भीतर रह जायँ, तो विष उत्पन्न कर दें। रुधिर जब बाहर की हवा के संपर्क में आता है, तो जम जाता है और सहरेस की भाँति लसलसा पदार्थ बन जाता है, तथा ज़ख्म पर पपड़ी डाल देने की नींव डालता है। करोड़ो देहाणु जिनका कर्तव्य मरम्मत करना है, मौक़े पर दौड़कर पहुँचते, और रेशो को ज़ोड़ने लग ज़ाते हैं तथा अपने काम मे आश्चर्य-जनक चैतन्यता और कर्मण्यता दिख़ाते हैं। ज़ख्म के दोनो ओर के रेशो, नाड़ियो, रुधिर की नलियो

के देहाणु बढ़ने लगते हैं और करोड़ो नए देहाणुओं को पैदा कर देते हैं, जो दोनो ओर आगे बढ़कर अंत में ज़ख्म के बीच में मिल जाते हैं। पहले तो इन देहाणुओं का बढ़ना बेक़ायदे और निष्प्रयोजन-सा प्रतीत होता है, परंतु थोड़े ही अर्से मे इसका शुभ परिणाम प्रकट होने लगता है। रुधिर की नलियों के नए देहाणु उस पार के उसी प्रकार के देहाणुओं से मिलने लगते हैं, और नई नली बन जाती है, जिसमें रुधिर फिर बहने लगे। जोड़नेवाले रेशों के देहाणु अपनी ही भाँति के अन्य देहाणुओं से मिल जाते हैं, और चारो ओर से ज़ख्म भरने लगते हैं। नाड़ियो के नए देहाणु प्रत्येक पृथक् सिरो पर बनने लगते हैं और बाल-सदृश रेशो को आगे बढ़ाकर शनैः-शनैः तार जोड़ देते हैं, फिर बिना बाधा के समाचार आने-जाने लगते हैं। जब यह भीतरी कुल काम समाप्त हो जाता है और रुधिर को नलियाँ, नाड़ियाँ और जोड़नेवाले रेशे अच्छी तरह मरम्मत हो जाते है, तब चमड़े के देहाणु काम समाप्त करने में लग जाते है, और चमड़े के नए देहाणु बनने लगते हैं तथा ज़ख्म के ऊपर नया चमड़ा बन जाता है, जो ज़ख्म कि अब तक पूरा हो गया रहता है। ये सब बातें बड़ी तरतीब से होती हैं, जिससे चेतना और सुरीति झलकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं, शरीर की सारी क्रियाओं के करनेवाले इन्हीं देहाणुओं के ही दल हैं।

चौथा अध्याय

देहाणुओं के प्रेरक और नेता

पाठकगण देहाणुओं के वर्णन में देख आए है कि ये नन्हे-नन्हे देहाणु जीवित और सचेतन हैं, पर इनका जीवन और इनकी चेतनता बहुत विकास को नहीं प्राप्त है। इनकी चेतनता वनस्पति की चेतनता के समान है। इन देहाणुओ को भिन्न-भिन्न आकार, भिन्न-भिन्न गुण और भिन्न-भिन्न उद्देशवाले बनाने के लिये इनसे कुछ और उच्च चेतनता की आवश्यकता होती है, जो एक दल से रेशा बनाने की, दूसरे दल से हड्डी बनाने की, और तीसरे दल से आँख की पुतली तथा चौथे दल से नाड़ियाँ बनाने की प्रेरणा करे। देहाणु की चेतनता से ऊपर जो चेतना है, उसे देहाणु-समूह-चेतना कहते है। कई देहाणु-समूहो की चेतना को प्रेरणा करनेवाली जो चेतना है, उसे देहाणु बृहत्-समूह-चेतना कह सकते हैं। इस प्रकार कई देहाणु-बृहत् समूह-चेतनाओं के प्रेरणा करनेवाले को देहाणु महाबृहत्-समूह-चेतना या मानस कह सकते हैं। यह सिलसिला इसी प्रकार ऊपर तब तक चला जाता है, जब तक अंत में मनुष्य के प्रवृत्ति-मानस (Instinct) तक नहीं पहुँच जाता। देहाणु-चेतना या देहाणु-मानस भौतिक द्रव्य और प्राण अर्थात् शक्ति लेकर ही काम करता है, पर

देहाणु-समूह मानस-देहाणुओं के ऊपर ही अपना शासन करता है। भौतिक द्रव्य और प्राण न हो, तो देहाणु-मानस अपने को प्रकट नहीं कर सकता। वैसे ही देहाणु-मानस न हों, तो देहाणु-समूह-मानस अपने को प्रकट नहीं कर सकता। अब हम देखते हैं, तो इन सब मानसों का शासक मनुष्य का प्रवृत्ति-मानस (Instinct) है, जो शरीर के सारे देहाणु-मानसों पर समूह-मानसों द्वारा शासन करता है। इससे स्पष्ट हुआ कि मानस, शक्ति और द्रव्य यही तीन मिलकर नीच कोटि के जीवन बनाते हैं। इन तीनों में से एक की भी कमी हो, तो जीवन प्रकट नहीं हो सकता।

इस प्रवृत्ति-मानस में बड़ी शक्ति है। उदाहरण के लिये कीड़े-मकोड़ों को देखिए, तो वे नई टाँगों और पंजों इत्यादि के जमा लेने में समर्थ होते हैं। घोंघे तो अपने सिर के कुछ भागों को भी नया बना लेते हैं; यहाँ तक कि यदि उनकी आँखें नष्ट हो जायँ, तो नई आँखें भी पैदा कर लेते हैं। कोई-कोई मछलियाँ अपनी नई पूँछ पैदा कर लेती हैं। छिपकली आदि नई पूँछें, हड्डियाँ, मांस-पेशियाँ और अपनी रीढ़ की हड्डी के भी कुछ भागों को नया पैदा कर लेती हैं। नीचातिनीच जंतुओं को अपने खोए हुए अंग को फिर से पैदा कर लेने का अधिक-से-अधिक सामर्थ्य है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि जो जंतु जितनी ही नीच कोटि का है, वह नए अंगों को बना लेने में उतना ही अधिक समर्थ है। कुछ बहुत ही अधिक

नीच कोटि के ऐसे भी जंतु होते हैं, कि यदि उनके शरीर का छोटे-से-छोटा भाग भी जीवित बचा हो, तो वे उससे नए भागो को पैदा करके फिर पूरे शरीरवाले बन जाते हैं। ज्यो-ज्यो जंतु उच्च और उच्चतर कोटि के होते जाते हैं; त्यों-त्यों उनकी यह शक्ति क्षीण होती जाती है। प्रकृति नीच जंतुओं में प्रवृत्ति-मानस को पूरा अवकाश और विस्तृत क्षेत्र देती है, परंतु ज्यों-ज्यो जीवन उच्च पदवी धारण करता है अर्थात् ऊँची योनि में आता है, त्यो-त्यों बुद्धि अधिक विकसित होने लगती है, और प्रवृत्ति-मानस की शक्ति और क्षेत्र संकुचित होने लगते हैं। फिर भी यहाँ एक उदाहरण पर ध्यान दीजिए। भेड़ और बकरी मनुष्य से नीच योनि के हैं। भेड़ और बकरियों की शीत-जाड़ा से रक्षा करने के लिये प्रवृत्ति-मानस उनके शरीर पर ऊन जमा लेता है; पर मनुष्य मे बुद्धि का विकास होने के कारण उसका प्रवृत्ति-मानस अपने शरीर पर ऊन नहीं जमा सकता। इसके अतिरिक्त मनुष्य की बुद्धि जब प्रकृति के बहुत प्रतिकूल चलने लगती है, त प्रवृत्ति-मानस की क्रियाओ मे और भी बाधाएँ पड़ती हैं। तो भी मनुष्य यदि प्रकृति के अनुकूल चले, तो उसका प्रवृत्ति-मानस बहुत कुछ कर सकता है। योगी लोग जो हठयोग के अभ्यासो से अपने प्रवृत्ति-मानस को जगा देते हैं, वे भी अपने शरीर द्वारा अद्भुत-अद्भुत कार्य करने लगते हैं।

यह प्रवृत्ति-मानस पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सब जीवो में

पाया जाता है। यह शरीर की आभ्यंतरिक क्रियाओ जैसे पाचन, रुधिर-संचार आदि का संचालन तो करता ही रहता है, पर भीतरी क्रियाओं के अतिरिक्त बहुत-सा बाहरी काम भी करता है। पशु-पक्षियों की चेतना की तो इसी तक परा काष्ठा है। प्रवृत्ति-मानस से अधिक ऊँचा विकास उनकी चेतना का नहीं होता। इसी प्रवृत्ति-मानस ही द्वारा वे अपना सारा काम करते है। किसी-किसी पशु-पक्षी का प्रवृत्ति-मानस आप-से-आप या मनुष्य की बुद्धि के संसर्ग से साधारण दशा से थोड़ा अधिक उन्नति कर जाता है, पर मनुष्य का प्रवृत्ति-मानस ऐसा है कि इसमें बहुत ऊँची श्रेणी तक विकास होने का अवकाश है। पशुओ के बच्चे जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक बहुत ही कम मानसिक विकास करते है, परंतु मनुष्य के बच्चे बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक बहुत ही अधिक विकास करते पाए जाते हैं। इनका बचपन के प्रवृत्ति-मानस से लेकर यौवन के गणितज्ञ, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, कवि, कला-कौशल-युक्त ऊँची-ऊँची श्रेणी तक और भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे विकास हो जाता है। यही प्रवृत्ति-मानस विकसते-विकसते बुद्धि, प्रतिभा और आत्म पदवी तक पहुँच जाता है।

ऊपर के वर्णन मे आपने ख़याल किया होगा कि शरीर के देहाणु एक-एक क्षण मे लाखो-करोड़ो की संख्या मे मरा करते हैं, और उनके स्थान मे नए-नए देहाणु उत्पन्न होकर काम करते हैं। वैज्ञानिको का कथन है कि मानव-शरीर में

इतने परिवर्तन हुआ करते हैं, अर्थात् पुराने द्रव्य बाहर फेंक दिए जाते और उनके स्थान पर नए द्रव्य आ जाते हैं कि हमारे शरीर में आज जो द्रव्य हैं, इनका लेश-मात्र भी अंश साढ़े सात वर्ष के पश्चात् इसमे न रह जायगा। उसके स्थान मे नए द्रव्य आ जायँगे।

द्रव्यो और देहाणुओं का परिवर्तन तो हुआ ही करता है, पर प्रवृत्ति-मानस अपने स्थान पर बना रहता है। देहाणुओं द्वारा द्रव्य आते और जाते हैं; पर प्रवृत्ति-मानस बना ही रहता है। जब तक जीवन है, तब तक यह शरीर से हटता नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रवृत्ति-मानस यद्यपि देहाणुओं द्वारा शारीरिक क्रियाओ का प्रेरक है, पर तो भी देहाणुओ और शरीर से भिन्न है।

यह बात इस प्रकार और भी अधिक स्पष्ट रीति से समझ मे आयगी। कल्पना कीजिए, एक बड़ा भारी एंजिन है, जिसके द्वारा विद्युत्-शक्ति उत्पन्न की जाती है। वह विद्युत्-शक्ति तारो द्वारा अनेक स्थानो मे वितरित की जाती है, और उन अनेक स्थानो मे इसी विद्युत्-शक्ति से प्रकाश किया जाता है, पंखे चलते हैं, अनेक क्रियाएँ होती हैं। एंजिन का चलानेवाला मनुष्य एंजिन चलाता है, एक स्थान से प्रेरणा करता है, और जहाँ तक उसके एंजिन से तारों द्वारा समुचित संबंध है, वहाँ तक उसकी प्रेरणा से काम जारी रहते हैं। सब रोशनियों और पंखो मे एक के स्थान पर

दूसरा लगाया जाता है, पंखे और तार पुराने होते, और नए बना करते हैं; परंतु उनके टूटने, दूर होने और उनके स्थान पर नयों के आ जाने से एंजिन चलानेवाले पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था मे हम कहते हैं कि एंजिन चलानेवाला मनुष्य एंजिन और उसके तारो के विस्तार और क्रियाओं से पृथक् है। वैसे ही प्रवृत्ति-मानस यद्यपि शरीर के मस्तिष्क रूपी एंजिन चलाकर शरीर के सारे देहाणुओं को क्रिया मे प्रवृत्त रखता है, पर उसी में बैठे होने पर भी वह एंजिन और उससे लगे हुए तारो के जाल से भिन्न है। एक इंजीनियर जैसे आज यहाँ एंजिन बनाकर चला रहा है, वैसे ही संभव है, इस एंजिन को यहाँ ही छोड़कर कहीं अन्यत्र जाकर एंजिन बनावे, और वहाँ अपना कारख़ाना खोल दे। वैसे ही यह प्रवृत्ति-मानस भी इस शरीर रूपी एंजिन को छोड़कर दूसरे स्थान पर फिर दूसरे शरीर को संघटित, प्रेरित और संचालित कर सकता है। इंजीनियर और मानस में अंतर यह है कि एक इंजीनियर दूसरे इंजीनियर के बनाए हुए एंजिन पर भी अपनी क्रिया करता है, पर मानस अपने ही आयोजित किए हुए शरीर-यंत्र को चलाता है। कारण इंजीनियर एंजिन को अपने शरीर से अलग बनाता है, और मानस अपने ही गिर्द रेशम के कीड़े की भाँति ततु रूपी देहाणुओं को लपेटकर अपने लिये शरीर रूपी यंत्र बनाता है, परंतु उस यंत्र रूपी

शरीर के भीतर व्यापक रहते हुए भी उससे भिन्न और न्यारा है। जो उदाहरण एंजिन और इंजीनियर का दिया गया है, यद्यपि वह ठीक-ठीक नहीं घटता, पर समझने के लिये अच्छा दिग्दशन कर देता है।

अब हम लोग समझ गए कि शरीर रूपी जीवित यंत्र का प्रेरक, संचालक और नेता मानस है। यह मानस जब तक अधिक विकसित दशा को प्राप्त नही रहता, तब तक इसे प्रवृत्ति-मानस (Instinct) कहते हैं। यह प्रवृत्ति-मानस पशु-पक्षियो आदि अन्य जंतुओ मे भी पाया जाता है। इस मानस को विकसने के लिये बहुत बड़ा अवकाश है। यह बहुत बृहत् मानसिक क्षेत्र में विकस सकता है, और प्रबल शक्तियो, चेतना, प्रभाव, ज्ञान आदि का द्योतन कर सकता है। इसके नियमों का संक्षिप्त वर्णन अगले अध्याय मे किया जायगा। यहाँ पर इस बात पर इतना और ध्यान दे देना चाहिए कि मानस शब्द को यहाँ पर हम जीव शब्द का पर्यायवाचक व्यवहार कर रहे हैं। क्योकि जैसे आगे चलकर मृत्यु के वर्णन मे यह दिखलाया जायगा कि इस मानस रूपी इंजीनियर के निकल जाने पर शरीर रूपी एंजिन क्रिया-हीन हो जाता है, वैसे ही इस मानस रूपी एंजिन से जब आत्मा निकल जायगा, तो यह मानस भी क्रिया-हीन हो जायगा। पर अब तक हम मानस शब्द का प्रयोग आत्म-संयुक्त मानस के अर्थ में कर रहे हैं। आत्म-संयुक्त मानस को जीव कहा करते हैं।

शरीर के संगठन का संक्षिप्त वर्णन हो गया। इसका विस्तार के साथ वर्णन किसी मानव-शरीर-विज्ञान (Physiology) के पुस्तक में मिलेगा। हमारा उद्देश मानव-शरीर-विज्ञान दिखलाना नहीं है, किंतु जीवन-मरण का रहस्य जानना है। जीवन के समझने के लिये थोड़ा थोड़ा शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान का जानना आवश्यक है, क्योंकि शरीर और मन मिलकर ही जीवन होता है। अब शरीर के संबंध में जीवन-संबंधी आवश्यक बातें कहकर अगले अध्याय में मन-संबंधी आवश्यक बातें कही जायँगी।

पाँचवाँ अध्याय

मानस का विकास

देहाणुओं के वर्णन में कहा गया है कि देहाणु जब अपने को प्रकट करते हैं, तब द्रव्य, प्राण और अणुजीव अर्थात् देहाणु-मानस इन तीनो के संयोग से ही प्रकट करते हैं। वैसे ही यह मानस भी विना द्रव्य, प्राण और अपने संयोग के कभी हमारे गोचर नही होता। ऊपर हम यह भी कह आए हैं कि इसका विकास भी होता है। मानस क्या है, इसके कार्य करने के कौन-कौन-से नियम हैं, कैसे यह प्रकट होता है इत्यादि बातो के नियम है। जिस शास्त्र मे इन नियमो का वर्णन होता है, उसे मनोविज्ञान (Psychology) कहते हैं।

मानस मे विकास की प्रवृत्ति निर्वल या सवल रूप से स्वभाव ही से वर्तमान रहती है। इसका विकास स्वभाव ही से होता है। जहाँ इसके विकास के लिये आंतरिक प्रेरणा सवल और बाह्य-विधान उपयुक्त हुए, वहाँ इसका विकास क्षिप्र गति से होता है, पर जहाँ आंतरिक प्रेरणा निर्वल और बाह्य-विज्ञान प्रतिकूल हुए, वहाँ इसका विकास मंद गति से अधिक काल में होता है।

कल्पना कीजिए, किसी माता-पिता के यहाँ कोई बच्चा उत्पन्न हुआ। अब बचपन मे इस बच्चे का मानस केवल

प्रवृत्ति-मानस होगा। यह प्रवृत्ति-मानस भी सभी बच्चों का तुल्य और एकसम नहीं रहता। सबके प्रवृत्ति-मानस मे भेद हुआ करते हैं। किसी मे आंतरिक प्रेरणा प्रवल होती है, और किसी में निर्वल। किसी वच्चे के प्रवृत्ति-मानस की प्रवृत्तियाँ, झुकाव आदि एक ओर होते हैं, किसी वच्चे के मानस की दूसरी ओर होते हैं। ऐसा क्यो होता है? यह प्रश्न अभी गूढ प्रतीत होता है। संभव है, आगे चलकर हम इस पर अधिक विचार कर सकें, और इस विषय को अच्छी तरह समझकर इस प्रश्न का उतर दे सकें, पर इस समय तो हम यही उचित समझते हैं कि केवल इसी वात की धारणा कर लें कि भिन्न-भिन्न वच्चों के प्रवृत्ति-मानस की प्रवृतियों और आंतरिक प्रेरणा में भेद होता है। प्रवृत्ति से हमारा अभिप्राय झुकाव मे, और आंतरिक प्रेरणा से अभिप्राय आंतरिक शक्ति की न्यूनाधिकता से है।

अब इस प्रवृत्ति-मानस और शारीरिक संगठन को लेकर वच्चा उत्पन्न हुआ। संगठन का अभिप्राय तो आप समझ ही गए होंगे कि शरीर के सव क्रिया योग्य परस्पर संवद्ध अवयव। इस वच्चे का प्रवृति-मानस श्वसन, रुधिर-संचालन, ज्ञान और कर्म-वहन तथा दुग्ध-पाचन आदि क्रियाओं की प्रेरणा, संचालन और नेतृत्व कर रहा है। शरीर के देहाणु सव उस मानस की प्रेरणा से अपने अपने कर्तव्यों का विधिवत् पालन कर रहे है। दिन-पर-दिन शरीर अपनी शक्तियो

के साथ बढ़ता जाता है। पशुओ के बच्चो का प्रवृत्ति-मानस तो थोड़ा ही विकास करके रह जाता है, पर मनुष्य के बच्चे का मानस इस प्रकार अधिक विकास करता है—

उसकी आँख, कान, नाक आदि इंद्रियों पर संसार के बाहरी पदार्थों का आक्षेप आकर पड़ता है। जैसे आँख पर रंग, रूप और आकार आदि के आक्षेप पड़ते हैं। कान पर शब्द के आक्षेप पड़ते हैं, नासिका मे गंध के, रसना में स्वाद के और त्वचा में स्पर्श के, वैसे ही भीतरी अवयवों पर भूख, प्यास, रोग, पीड़ा आदि के आक्षेप पड़ते हैं। आक्षेपो की वेदनाएँ (Sansations) नाड़ी-तंतुओ द्वारा उसके मस्तिष्क तथा मानस पर पहुँचती हैं। पहले तो इन वेदनाओ के अर्थ को वह कुछ नहीं समझता कि ये क्या हैं, कहाँ से आईं, और क्यो? पर बार-बार इन्हीं वेदनाओं को ग्रहण करते-करते उसका मानस समझने लगता है कि यह वेदना अमुक स्थान से आई। यह समझ अनुभव से होती है। अब वेदनाएँ केवल वेदनाएँ ही न रहीं। अब वे समझ (Perceptiou) के रूप मे बदल गईं। कल्पना कीजिए कि उस बच्चे के आँख के सामने उसकी माता का मुख या स्तन बार-बार आता है। माता के मुख या स्तन का प्रतिबिंब बच्चे की आँख की पुतलिओ पर पड़ता है। नाड़ी-तंतु द्वारा उसकी वेदना उसके मानस तक पहुँचती है। वैसे ही उसी मुखवाली का स्तन जब उसके मुख में पड़ता है, मुख मे दूध जाता है, उसके स्वाद को वेदना भी

उसके मानस तक पहुँचती है। जब दूध पेट मे जाता है, और पाचन-क्रिया के देहाणु संतुष्ट होकर उस क्रिया को करने लगते हैं, तो उसकी वेदना भी उसके मानस तक पहुँचती है। बार-बार इन्हीं वेदनाओं को उसी माता स्थान से उत्पन्न होकर मानस तक आने से अब वह माता को समझने लगता है।

इसी प्रकार अपने मानस पर आई हुई वेदनाओ का अर्थ वह मानस से भिन्न पदार्थों पर करने लगता है, और वेदनाएँ परिवर्तित होकर समझ का काम देने लगती हैं। जब उसकी समझ भी विस्तार पाने लगती है और बाह्य पदार्थों के परि-वर्तनों और उनके भीतरी कारण-कार्यों को बार-बार के करने से अनुभव द्वारा समझने लगती है, तो समझ उन्नति करके भावना (Conception) में परिणत हो जाती है। मानस मे प्रत्येक मानसिक क्रिया का वेदना से लेकर समझ, भावना और इसके भी ऊपर की मानसिक घटनाओ का अंकन हुआ करता है। जो अंकन सर्वदा उदित नहीं रहता, डूबा रहता है, पर कभी-कभी उदित हो जाता है, उसे स्मरण कहते हैं। स्मृत या प्रत्यक्ष दो घटनाओं से तीसरी का अनुमान कर लेना ऊहा या अनुमान कहा जाता है। दृष्ट वस्तुओ की समझ के आधार पर अदृष्ट वस्तुओं, घटनाओं और दृश्यो का मानसिक चित्रण करना कल्पना कहा जाता है। घटनाओ से उन घटनाओं के मूल-तत्त्व या नियम का निकाल लेना तत्त्व-निर्णय या नियम-निर्णय हो जाता है। इन्हीं मानसिक शक्तियों

के साथ सुख दुःख का अनुभव करनेवाली भावनाओ का भी उदय होता है।

इस तरह हम देखते हैं, तो सीधी-सादी वेदनाओ ही को लेकर मानस अपना सारा मानसिक संसार रच लेता है। इन्हीं मानसिक क्रियाओ के समुदाय को बुद्धि कहते हैं। इन भिन्न-भिन्न क्रियाओ की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ (Faculties) होती हैं। किसी के मानस मे किसी क्रिया की कम शक्ति होती है, किसी की अधिक। क्यो? इसका वर्णन आगे किया जायगा, क्योंकि इसका संबंध भी पूर्व-वर्णित मानस की आंतरिक शक्ति से है।

यह मनोविज्ञान के मुख्य-मुख्य अंगों का संक्षेप में वर्णन किया गया है, जो केवल दिग्दर्शन-मात्र करा दिया गया है। इसका सविस्तर वर्णन मनोविज्ञान के किसी भी अच्छे ग्रंथ मे पाया जा सकता है। हमने मनोविज्ञान की केवल उन्हीं मोटी बातो के समझने का प्रयत्न किया है, जिनसे जाना जा सके कि जीवन क्या है? शरीर की बनावट कैसी है? उसमें मानस क्या कार्य करता है, और कैसे विकसता है? इन बातो को हम थोड़ा-थोड़ा अब समझने भी लगे। साधारण मनुष्यो के मन के विकास का वर्णन अब थोड़ी-सी और बातें कह-कर हम समाप्त करगे।

मानस में कर्तव्याकर्तव्य के विवेक की भी स्वाभाविक शक्ति होती है। यह शक्ति पशु-पक्षियों और अविकसित

मनुष्य के प्रवृत्ति-मानस (Instinct) से लेकर अच्छे-खासे विकसित मनुष्य की बुद्धि में पाई जाती है।

मुर्गी के अंडों के साथ यदि बतख के अंडे भी मुर्गी के सेने के लिये रख दिए जायँ, तो मुर्गी अपने और बतख के अंडों को समान समझकर सेवेगी। अंडे पककर जब उनमें से बच्चे पैदा होंगे, तब भी मुर्गी उनके साथ समान बर्ताव करेगी, परंतु पानी के तीर जाने पर बतख के बच्चे पानी मे जाने की चेष्टा करेंगे, और मुर्गी के बच्चे पानी से डरेंगे। इसका क्या कारण ? बतख के बच्चे का प्रवृत्ति-मानस उसे प्रेरणा कर रहा है कि पानी से लाभ उठाओ, वह तुम्हें हितकर होगा। मुर्गी के बच्चे को ऐसी प्रेरणा नहीं हो रही है। पशु-पक्षी अपने कर्तव्य की ओर अपने ही प्रवृत्ति-मानस द्वारा प्रेरित होते हैं। अकर्तव्य से दूर होने के लिये भी उनका प्रवृत्ति-मानस उन्हें प्रेरित करता है। वैसे ही मनुष्य में जब मानस का विकास होता है, तब भी कर्तव्याकर्तव्य-सूचक विवेक-शक्ति मानस में वर्तमान रहती है, जिसे अंतःकरण (Conscience) कहते हैं।

हम शरीर की बनावट के अध्याय में कह आए हैं कि बुद्धि का ज्यों-ज्यों उदय होता है, त्यों-त्यों प्रवृत्ति मानस संकुचित होता जाता है। हमने भेड़ और मनुष्य के शीत-निवारण के लिये रोमों की बहुतायत और अभाव का भी उदाहरण दिया था। यद्यपि प्रवृत्ति-मानस की शक्ति संकुचित होती जाती है,

पर उसका लोप नहीं होता। मनुष्य का कर्तव्य तो यही था कि प्रवृत्ति-मानस के द्योतित पथ पर अपने बुद्धि का विकास करता, तब इसका जीवन स्वाभाविक, आनंदमय और कल्याणकर बना रहता, परंतु आह! शोक के साथ कहना पड़ता है, मनुष्य के मानस मे जब बुद्धि का प्रदीप जलता है, तो इसकी आँखो को चकाचौंध आ जाती है। बिना दीपक के जो मार्ग सूझता था, अब दीपक की चकाचौंध मे स्पष्ट नहीं दिखाई देता। मनुष्य अपनी बुद्धि के अभिमान में आकर अंतःकरण की प्रेरणा से बाग़ी हो जाता है। अंतःकरण भी अपना वश न चलता हुआ देखकर अधिक बल के साथ प्रेरणा न करके केवल दिग्दर्शन-मात्र करा देता है, पर आपके मानस मे अंतःकरण की विवेकमय प्रेरणा करनेवाली शक्ति वर्तमान है, जो कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने, और अकर्तव्य-पथ को छोड़ देने का आदेश दिया करती है। इस अंतःकरण की सूचनाएँ मनुष्य के विश्वास और अनुसरण करने के लिये है। ये सूचनाएँ बहुत ही सत्य हुआ करती है, यदि अपनी कृत्रिम और अभिमानी बुद्धि का उस पर आवरण न डाल दिया जाय। यदि मनुष्य अपने अंतःकरण को अपने अभिमानो और दुष्कर्मों से दबाकर नीचे न गाड़ दे, उस पर आवरण न डाल दे, उसके ऊपर श्रद्धा और विश्वास करे, तो उसकी ज्योति प्रबल होने लगती है। उसकी ज्योति में बिना बुद्धि की अनेक क्रियाओं ही के स्पष्ट ज्ञान और कर्तव्य का उदय

होता है। उस दशा में उसी अंतःकरण को प्रतिभा कहते हैं। आज जो सत्य किसी अपढ़ मनुष्य की प्रतिभा द्वारा द्योतित हुआ है, उसी सत्य पर विज्ञानी और ज्ञानी अपनी बुद्धि का विकास करते-करते पचासों वर्ष तथा शताब्दियों पीछे पहुँचते हैं। प्रतिभा और अंतःकरण की कही हुई बातें सत्य और विश्वसनीय हैं। प्रतिभा मन और बुद्धि के ऊपर आत्मा की किरण है। नीतिज्ञों और चालाक बुद्धिमानों ने सोचते-विचारते और अनुभव करते करते बहुत दिनों के बाद इस सिद्धांत को निकाला कि "ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है" (Honesty is the best policy), परंतु अंतःकरण सवदा सच बोलने के लिये उत्साहित किया करता है और असत्य बोलने पर खिन्न हो जाता है। इसी खिन्नता को अंतःकरण का डंक (Prich of conscience) कहते हैं।

ऊपर देख आए हैं कि बुद्धि का मूल-आधार वेदन है। यही वेदन बुद्धि की इकाई है। इसी इकाई को लेकर बुद्धि समझ, भावना, अनुमान, कल्पना, तत्त्व-निर्णय या नियम-निर्णय आदि अनेक क्रियाएँ करके अपना ज्ञान प्रकट करती है। जिस घटना की वेदना ही नहीं हुई, बुद्धि उसका कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकती। जिस घटना की वेदना हुई, परंतु ग़लत हुई, तो उस वेदना पर बुद्धि द्वारा रचा हुआ ज्ञान सब अपूर्ण और ग़लत हो जाता है। वेदन ठीक होने पर भी यदि समझ, भावना, अनुमान, कल्पना आदि क्रियाएँ करने

में गलती हुई, जैसी प्रायः हुआ करती है, भी बुद्धि द्वारा प्रकटित ज्ञान ग़लत हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं, बुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में बड़ी पेचीदा क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, तिस पर भी उस ज्ञान के पग-पग पर ग़लत हो जाने की संभावना है, पर मनुष्य चूंकि बुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में बड़ा परिश्रम करता है, इसलिये बुद्धि ही के ज्ञान को प्रबल मानता है। सच भी है। प्रतिभा तो सबकी खुली नहीं है, सबको तो थोड़ी या बहुत बुद्धि ही पर अधिकार है। बुद्धि पर भरोसा न करें, तो क्या करें। परंतु इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि किसी समय में मनुष्य की बुद्धि जिस ज्ञान को सत्य मानती थी, काल और उन्नति पाकर वही ज्ञान असत्य प्रमाणित हुआ। बुद्धि का ज्ञान पेचीदा रास्ते से प्राप्त होता है।

इसके विपरीत अंतःकरण अथवा प्रतिभा द्वारा प्राप्त ज्ञान सीधा, स्पष्ट और अनवहित प्राप्त होता है। जैसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि इस समय दिन है या रात। वैसे ही प्रतिभा द्वारा हमारी प्रतिभा जहाँ तक पहुँचती है, वहाँ तक के ज्ञान को हम स्पष्ट देखते हैं। प्रतिभा द्वारा प्राप्त ज्ञान में कोई आशंका ही नहीं रहती। पर खेद इतना ही है कि सबकी प्रतिभा बहुत विकसती नहीं, क्योंकि हम अपनी बुद्धि के नीचे प्रतिभा को दबा देते हैं। उसे विकसने के लिये पूरा आंतरिक और बाह्य विधान नहीं जुटाते।

जिन लोगों ने जिस-जिस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के विक-

सने के लिये आंतरिक या बाह्य विधान जुटा दिए हैं, उनको प्रतिभा उस-उस क्षेत्र में खूब ही विकसी है। तब इसी प्रतिभा को दिव्य दृष्टि और दिव्य ज्ञान कहने लगते हैं। यह प्रतिभा, दिव्य दृष्टि अथवा दिव्य ज्ञान सब काल और सब देशों में कहीं विकसा पाया जाता है, कही योगाभ्यास से विकसाया गया है, और कहीं आप-से-आप खुला हुआ प्रतीत हुआ है। मिस्र देश के पुराने निवासियो मे, फारस के मेजाई लोगो में, चेल्डियन लोगो मे, पुराने रोमन कैथोलिक लोगो में, योरप के भिन्न-भिन्न देशो और अमेरिका आदि देशो मे इस गूढ़ ज्ञान का उल्लेख मिलता और आजकल भी यह ज्ञान पाया जाता है। विना कॉलेज की शिक्षा पाए शेक्सपियर ने कैसे इतनी और ऐसी ज्ञान की बातें कहीं कि बड़े-बड़े विद्वानो की बुद्धि समझने में चक्कर खाने लगती है। कवियो मे इस प्रतिभा का उदय हुआ है। विना बुद्धि का बहुत विकास किए हुए मनुष्यो में इस प्रतिभा का ऐसा उदय हुआ है कि अपेक्षतः कम पढ़े-लिखे मनुष्यों ने वाष्प, विद्युत और अन्य संबंधो में बड़े-बड़े आविष्कार कर दिए हैं। भारत मे इस प्रतिभा, इस दिव्य दृष्टि के जगाने और विकसाने के लिये तो योगदर्शन और योग-साधन खूब ही विस्तार पाए थे।

अब साधारण दृष्टि से हम जीवन को जैसा पाते हैं, उसके अंगों को एक-एक करके देख चुके। हम देख चुके कि देहाणुओं से निर्मित यह शरीर बना हुआ खड़ा है। हम देख चुके

कि प्रवृत्ति-मानस द्वारा प्रेरित होकर इस शरीर की सब क्रियाएँ हो रही हैं। हम देख चुके कि प्रवृत्ति-मानस में कैसे वेदनो से बुद्धि का ज्ञान अर्जित हुआ है। हम यह भी देख चुके कि इसी मानस मे कर्तव्याकर्तव्य का विवेक करनेवाला अंतःकरण भी छिपा पड़ा है, जो धीमी वाणी से कुछ अकाट्य सत्य द्योतन कर रहा है। हम यह भी देख आए हैं, किसी-किसी मनुष्य मे प्रतिभा झलककर ऐसी-ऐसी सत्य बातें दिखा देती है कि वुद्धि अपनी पेचीदा क्रियाएँ करते-करते बहुत दिनो मे उस सत्य को ग्रहण कर सकती है। सत्य तो यह है कि मनुष्य-जाति मे पहलेपहल प्रतिभा ही द्वारा ज्ञान की झलक आती है, फिर फिलासफी और विज्ञान द्वारा उसकी पुष्टि होती है। ये ही सब बातें मिलकर जीवन है। साधारण वुद्धि और वैज्ञानिक वुद्धि दोनो मिलकर जीवन को जैसा देखती हैं, उसी के अनुसार उसका ढाँचा खड़ा कर दिया गया है।

अगले अध्याय मे 'प्रतिभा की विश्वसनीयता और उसके द्वारा देखे हुए जीवन' पर विचार किया जायगा।

छठा अध्याय

प्रतिभा की विश्वसनीयता और उसके द्वारा देखा हुआ जीवन

प्रतिभा के विकास द्वारा जीवन-संबंधी जो बाते स्पष्ट रूप से जानी गई है, वे अत्यंत विश्वसनीय हैं। बुद्धि द्वारा जानी हुई बातें उतनी विश्वसनीय नही हो सकती, जितनी प्रतिभा द्वारा जानी हुई होती हैं, क्योंकि बुद्धि में, जैसा हम लोग ऊपर देख आए है, अनेक गलतियाॅ हो सकती हैं। इसी कारण बहुत दिनों से यह कहावत चली आती है कि 'तर्कोऽप्रतिष्ठः' अर्थात् तर्क का कोई ठिकाना नहीं। यह तो निश्चय है कि बुद्धि केवल गोचर ही बातो तक पहुॅचेगी, क्योंकि इसके आधार ही वेदन हैं। क्या संसार की अवधि उतनी ही है, जहाॅ तक हमे गोचर है? केंचुए को केवल एक ही स्पर्श की इंद्रिय होती है, इसलिये वह स्पर्श से भिन्न और कुछ नहीं जान सकता। तो क्या स्पर्श के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है? वैसे ही मनुष्य की पाँच इंद्रियाॅ जहाँ न जायॅ, वहाॅ क्या उस वस्तु का अस्तित्व ही नहीं? सब मनुष्य की जहाँ आप ही बुद्धि नही पहुँचती, वहाँ जानकार लोगो से सहायता लेते हैं। सारा संसार डॉक्टर, वैद्य नहीं है, पर रोगो

की दशा मे जहॉ उसकी बुद्धि नहीं पहुँचती, वहाँ डॉक्टरो से पूछता है, और उसकी बात सच मानता है। सारा संसार ज्योतिषी नही है, पर खगोल के विषय मे जहॉ उसकी बुद्धि नहीं पहुँचती, वहॉ ज्योतिषियो की कही हुई (पंचांगो की) बाते सत्य मानता है। वैसे ही जीवन के संबंध मे साधारण मनुष्यों की जहॉ बुद्धि न पहुँचे, वहॉ जीवन के जानकार प्रतिभावालो का विश्वास करना चाहिए। यदि यह कहा जाय कि डॉक्टर और ज्योतिषी अपने विज्ञान के बल से कहते हैं। उस विज्ञान तक हम भी चाहे, तो पहुँच सकते है। तो योगी लोग भी कहते हैं कि प्रतिभा को जो चाहे, सो विकसा सकता है। उद्योग और साधन चाहिए। परंतु संसार का कैसा दुराग्रह है कि विज्ञानी की बातो का तो विश्वास करे, पर प्रतिभावालो को बातों का इसलिये विश्वास न करे कि वह प्रमाण नहीं देता है। प्रमाण कैसे दे? दस आदमो ऐसे है, जिन्होने गुड़ नहीं खाया, एक मनुष्य ने गुड़ खाया है। जिसने गुड़ खाया ह, वह कहता है कि गुड़ मीठा होता है। शेष दस आदमी जिन्होने गुड़ नहीं खाया है, वे कहें कि क्या प्रामण है कि गुड़ मीठा होता है? तो गुड़ खानेवाला क्या प्रमाण दे सकता है? केवल इतना ही कह सकता है कि खाकर देख लो। वैसे ही प्रतिभावाले भी कहते हैं कि प्रतिभा जगाकर देख लो। यह अंतःकरण या प्रतिमा सबमे है। जिसको जग उठी है, वह

बातो को स्पष्ट जान जाता है। जिसका अंतःकरण जगा नहीं है, वह अंतःकरण द्वारा प्रेरित विषयो और बातो को धुँधले रूप मे देखता है। अब देखना चाहिए, इस जीव के विषय मे सारे देश का अंतःकरण क्या कहता है ?

जो लोग हठ करके अपने अंतःकरण का गला घोटकर उसके ऊपर अपनी अप्रतिष्ठ बुद्धि स्थापित करते हैं, उन्हें छोडकर शेष सारे संसार का अंतःकरण यह कहता है—

(१) जीव के ऊपर एक बड़ी शक्ति है। असभ्य-से-असभ्य मनुष्य से लेकर सभ्यातिसभ्य तक उस शक्ति को मानते, उससे डरते, और उसे पूजते हैं। उस शक्ति के अस्तित्व को तो अंतःकरण बतला देता है, पर उसके रूप-गुण को सबका अंतःकरण नहीं बतलाता। अब भिन्न-भिन्न मनुष्यों का भिन्न-भिन्न बुद्धि अपनी समझ के अनुसार रूप-गुण बतलाने लगती है। कोई उसको ईश्वर रूप मे मानता है, कोई भूत, प्रेतादि रूप मे।

(२) सत्य व्यवहार करना चाहिए; सबको आत्मवत् समझना चाहिए। जहाँ मनुष्य अंतःकरण के इस आदर्श से विचलता है, वहाँ अंतःकरण को काँटा-सा चुभ जाता है।

(३) जीव मरने पर भी क़ायम रहता है। इसके उपलक्ष मे सारा संसार मरे हुए मनुष्य के जीव के लिये कोई श्राद्ध करता है, कोई चढ़ावा चढ़ाता है, और कोई प्रार्थना और दुआ करता है।

(४) जीव अपने किए हुए कर्मों का उत्तरदाता है, इसलिये सारा संसार मरने पर भी जीव के लिये अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार स्वर्ग-नरक अथवा सुख-दुःख की कल्पना करता है।

(५) जीव की त्रुटियाँ कभी-न-कभी पूरी होंगी, इसलिये सारे संसार की आशा बँधी रहती है। इस जीवन में आशाओं के निष्फल होने पर भी आगे के लिये आशा रहती है। और, आगे के लिये सारा मानव-संसार यत्न करता है।

इत्यादि बातें अंतःकरण से धुँधले रूप में उत्पन्न हुआ करती हैं। ये बातें प्रायः मनुष्य-मात्र के अंतःकरण से प्रकट होती है, परंतु जिन लोगों का अंतःकरण विना बाधा के विकसकर प्रतिभा रूप मे होकर जीवन के विषय में स्पष्ट रूप से अनुभव करता है, वे जीवन के विषय मे स्पष्ट बातें कहते हैं। ऐसे लोग योगी हैं। चाहे वे अपने को योगी मानते, जानते और कहते हों, चाहे नहीं।

उन्हीं का कथन है कि जीव का मूल-तत्त्व आत्मा है। वह आत्मा सात भूमिकाओं में थोड़े बहुत अंशों में प्रकट है और अपना स्फुरण या द्योतन कर रहा है। निम्न-लिखित सात भूमिकाएँ हैं, जिनमें सर्वोच्च तो आत्मा की भूमिका है। शेष छ भूमिकाएँ आत्मा के ऊपर आवरण हैं। इन आवरणों मे सबसे बाहर और स्थूल यह स्थूल शरीर है। इससे सूक्ष्म लिंग-शरीर या आकाश-शरीर है। इससे सूक्ष्म प्राण का

आवरण है। उसके भीतर प्रवृत्ति-मानस है। तब बुद्धि है। फिर आत्म-मानस है, और सबके भीतर आत्मा है। इनका क्रम यो है—

७—आत्मा

६—आत्म-मानस

५—बुद्धि

४—प्रवृत्ति-मानस

३—प्राण या जीवन-शक्ति

२—लिंग या आकाश-शरीर

१— स्थूल शरीर

अब नीचे ही से इनका क्रमशः वर्णन किया जाता है, जैसा योगियों ने इनके विषय मे अपनी प्रतिभा से प्राप्त किया हुआ अनुभव कहा है—

(१) स्थूल शरीर

इस स्थूल शरीर के विषय में योगियों का भी वही कथन है, जो वैज्ञानिको का है। अंतर केवल इतना ही है कि साधारण लोग यह जानते और मानते हैं कि स्थूल शरीर जैसा है, वैसा है, इसमे बहुत अधिक उन्नति नहीं हो सकती, किंतु योगी लोग कहते हैं कि प्रकृति के नियमो का अनुसरण करके, प्राकृतिक नियमों के अनुसार अभ्यास करके मनुष्य इसकी आश्चर्य-जनक उन्नति कर सकता है, इसे उच्च-से-उच्च पूर्णता तक पहुँचा सकता है, और इस शरीर से आश्चर्य-

जनक लाभ उठा सकता है। शरीर को मन के अधीन रखना चाहिए, तभी यह उत्तम काम दे सकता है। उलटा इसके जब शरीर ही मन पर अधिकार रखने लगेगा, तो काम बिगड़ जायगा। इस शरीर से एक प्रकार का भास निकला करता है, जिसे योगी देख सकते हैं। यह भास शरीर से दो फ़ीट बाहर के गिर्द अंडाकार वृत्त मे रहता है। इस भास के कण हवा और आकाश मे छुटकर रहते जाते है, जिन्हे देखकर कुते शिकार का पीछा करते हैं। स्वस्थ मनुष्य का भास सीधा धारीदार होता है, और अस्वस्थ का जानवरो के ऊन के समान टेढ़ा-मेढ़ा। इस भास मे कोई रंग नहीं होता।

(२) लिंग या आकाश-शरीर

स्थूल शरीर से सूक्ष्म, लिंग या आकाश-शरीर का क्रम आता है। इसके विषय मे सर्व-साधारण का ज्ञान बहुत ही कम है। यह स्थूल शरीर स बहुत ही घना संबंध रखता है और उसी का सार है। इस शरीर को कुछ लोग सब काल मे जानते आए हैं। इसके स्वभाव को अच्छी तरह न जानकर लोगो ने इस पर बड़ा-बड़ा भ्रम किया है। इसको लोगो ने आकाश-पुरुष, छाया-पुरुष, भूत, प्रेत और क्या-क्या नहीं कहा है। यह स्थूल शरीर क ही तत्वो से, उन्हीं क सार से बना है। जैसे पानी से बर्फ और भाप आदि कई दशाएँ होती हैं, वैसे ही स्थूल शरीर के तत्वो को भी कई

दशाएँ होती हैं। पानी की अदृश्य दशा भाप है। वैसे ही स्थूल शरीर की अदृश्य दशा लिंग-शरीर है। यह लिंग-शरीर ठीक-ठीक स्थूल शरीर के अनुरूप होता है, और कुछ दशाओ मे स्थूल शरीर से पृथक् भी हो सकता है। जान-बूझकर इसे स्थूल शरीर से पृथक् करना कुछ कष्टसाध्य हैं। परंतु जिन लोगों ने कुछ साधना की है, वे इसे पृथक् करके दूर की यात्रा मे भी भेज सकते है। दिव्य दृष्टिवाले को यह लिंग-शरीर ठीक-ठीक स्थूल शरीर के अनुरूप पतले धागे से जुटा दिखाई देता है। कभी-कभी किसी दशा-विशेप मे मित्रो का लिग-शरीर मित्रो को दिखाई देता है। यह शरीर जीव का वैसा ही आवरण है, जैसा स्थूल शरीर। स्वप्न-दशा मे जब यह लिंग-शरीर को छोड़कर बाहर निकल जाता है, तो मनोरंजक घटनाओ का अनुभव करता है। इस शरीर से भाप के रंग-रूप का भास निकला करता है। यह भास भी शरीर के इर्द-गिर्द तीन फोट बाहर घेरा दिए अंडाकार होता है। जिन लोगो ने भूत-प्रेत देखा होगा, उन्होने इस भास को भी उसके गिर्द देखा होगा।

(३) प्राण वा जीवन-शक्ति

प्राण यद्यपि सर्वव्यापक शक्ति है, पर यहाँ हम इसे केवल जीवन-शक्ति के रूप मे देखते है। यह जीवन-शक्ति जीवन के प्रत्येक रूप—वनस्पति से लेकर मनुष्य तक—में पाई जाती है। प्राण सभी जीवों मे रहता है। योगी लोग कहते है,

जीवन सभी पदार्थों मे है। प्रत्येक परमाणु जीवित है। जड़ पदार्थ और जड़ परमाणु इसलिये निर्जीव जान पड़ते हैं कि उनमे जीवन का विकास बहुत ही कम हुआ है। इसलिये प्राण सब पदार्थों मे और सर्वत्र है। योगियो का कहना है, यह प्राण प्राणायाम द्वारा शरीर मे अधिक परिमाण मे एकत्र और संचित किया जा सकता है। इसे शरीर के अंग-प्रत्यंगो मे भेजकर शरीर को अधिक शक्तिमान्, पुष्ट और विकसित कर सकते हैं। इसके द्वारा अपनो और अन्यो की पीड़ाएँ अपहरण की जा सकती है। यह प्राण साधारण मनुष्यो की दृष्टि से तो अदृश्य रहता है, पर अधिक साधना-वालों को दिखाई देता है। इसका भास शरीर से वाहर दो-तीन फीट के घेरे मे, शरीर के चारो ओर, विद्युत् की चिनगारियो के रूप मे, बादल के रूप का दिखाई देता है। प्राण का रंग फीका गुलाबी होता है। यह केवल योगियों को ही दिखाई देता है। कभी-कभी साधारण मनुष्यो को भी गर्म चूल्हे से कंपायमान गर्मी की निकलती हुई धार के सदृश दिखाई देता है।

उपर्युक्त तीनो आवरण अर्थात् स्थूल शरीर, लिंग-शरीर और प्राण-शरीर द्रव्यो के बने हैं, और जीव इनके अंशो को तथा इन्हे उसी प्रकार बदला करता है, जैसे मनुष्य अपने कपड़ो को।

अब जो नीचे चार तत्त्व दिए जाते हैं, वे मनुष्य के सोचने-

विचारनेवाले अंग है—चैतन्य अंग है। इनमे से जो नीचतम प्रवृत्ति मानस है, वह भी उच्चतर अंग हो जाता है।

पहली दृष्टि मे तो जान पड़ता है कि मनुष्य का चैतन्य मन ही मनुष्य का अधिकतम कार्य करता है। परंतु थोड़ा ही ध्यान देने से जान पड़ेगा कि मन की चैतन्य क्रियाएँ केवल थोड़ी ही होती हैं। अधिकांश काम तो अचेतन मानस द्वारा हुआ करता है।

(४) प्रवृत्ति-मानस

इस प्रवृत्ति-मानस का पहला उदय खनिज पदार्थों मे और विशेष करके कलमवालो (Crystals) मे पाया जाता है। वनस्पति मे यह और भी स्पष्ट तथा उच्चतर विकस उठता है। किसी-किसी उच्च वनस्पति मे तो चेतना के धुँधले चिह्न भी पाए जाते हैं। नीच जंतुओ में प्रवृत्ति-मानस की और भी अधिक मात्रा प्रकट हो जाती है। सबसे अधिक इसका परिमाण मनुष्य-जीवन में पाया जाता है। मनुष्य मे यही मानस विकसकर बुद्धि को दशा तक पहुँचता है, और कभी-कभी बुद्धि को दबाकर अपने वश में कर लेता तथा कभी-कभी बुद्धि इसे दबाकर आप शासन कर बैठती है। पर स्मरण रखना चाहिए कि जीव की उच्चतम भूमिका मे भी यह प्रवृत्ति-मानस कभी स्वामी और कभी दास बनकर क्रमशः क्षीण होता पहुँचता है। प्रारंभिक दशा मे प्रवृत्ति-मानस बहुत ही लाभदायक होता है। शरीर की परवरिश

की सब क्रियाएँ इसी की प्रेरणा से, अज्ञातरूप मे, हुआ करती हैं। मनुष्य यदि इसे अच्छी तरह समझ जाय, तो इसे अच्छा सेवक बना सकता है। परंतु यदि मनुष्य इसे अपना स्वामी बनाए रक्खे, तो फिर उसका उन्नति करना असाध्य हो जाय। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि मनुष्य अभी विकास ही कर रहा है; अभी तक इसका पूरा विकास नही हुआ है। अब तक जो इसका विकास हुआ है, वह बड़े परिश्रम की यात्रा से हुआ है। पर तो भी विकास का अभी प्रारंभ ही है। शरीर के पोषण की क्रियाएँ, मरम्मत, परिवर्तन, पाचन, रस-ग्रहण, मल-निर्वासन आदि क्रिया यही करता है, जिसकी खबर चैतन्य-मानस तक को नहीं होती। यही सब देहाणुओ को प्रेरणा और सबके कामो का निरीक्षण करता है। यही प्रवृत्ति-मानस पशु-पक्षियो से उनकी माँदें और घोसले बनवाता है, जाड़ा आनेवाला होता है, तो उनसे देश-त्याग कराता है। मनुष्य पहले चैतन्य-मानस द्वारा नया कार्य सीखता है, फिर अभ्यास करके, उस कार्य को आदत का रूप देकर इसी प्रवृत्ति-मानस के सिपुर्द कर देता है। फिर तो प्रवृत्ति-मानस उस कार्य को ऐसे करने लगता है कि चैतन्य-मानस को केवल कभी-कभी निगरानी ही करनी रह जाती है। आदते पड़-पड़कर इसी प्रवृत्ति-मानस में लीन हो जाया करती हैं। पिछली सीखी और अनुभव की हुई बातो का बीज इसी प्रवृत्ति-मानस मे रहता है।

बाहर से आई हुई भावनाओ का सार भी इसी मानस मे, अज्ञातरूप से, जमा होता जाता है। यही मानस नीच आतुरताओ, वृत्तियो, कामनाओ, प्रवृत्तियो और भावनाओ आदि का आधार-स्थल है। भूख, प्यास, काम, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, प्रतिशोध, वासनाएँ आदि इसी मे घर बनाए है। अभिमान, मत्सर आदि सब इसी भूमिका की वस्तुएँ हैं। इसमे पाशविक वृत्तियाँ भी है, जिन्हे योगी लोग अपने वश मे करके लाभ उठाते हैं, और उनके वश मे होकर अपना अधः पतन नहीं करते।

(५) बुद्धि

मानस मे जब बुद्धि का विकास होता है, तो इसकी उच्च श्रेणी में उन्नति होती है। अब सच्ची मनुष्यता का आना प्रारंभ होता है। इसके पहले पशुता ही थी। बुद्धि के विकास के साथ-साथ मनुष्य अब अपने को भी कुछ-कुछ जानने लगता है। अपने आपके ज्ञान का उदय होना ही बुद्धि के उदय का चिह्न है। पशुओ को वेदन तो होता है; भूख, प्यास, कामेच्छा प्रकट होती है। इनकी चेतना सीधी रहती है, केवल सूचनाएँ ही मिला करती हैं। चेतना का मुख बाहर की ओर होता है। पशु या अविकसित मनुष्य अपनी आशाओ, आशंकाओं, उत्साहो, उद्देशो, विचारो का चिंतन और इनकी तुलना अन्यों की आशाओ आदि से नहीं कर सकते। वे अपनी दृष्टि को अपने ही भीतर घुमाकर सूक्ष्म बातों पर विचार नहीं कर सकते। परंतु जब मनुष्य मे आपे की चेतना उदय होने

लगती है, तब वह 'हम' को समझने लगता है। वह अन्यों से अपनी तुलना और तर्क करने लगता है। अपनी चेतना क्या है, इसका स्वयं समझना तो सरल है, पर समझाना बड़ा कठिन। बिना अपनी चेतनावाला मनुष्य जानता तो है, परंतु अपनी चेतना की सहायता से ही वह जान सकता है कि "मैं जानता हूँ"। योगी लोग कहते है, जब 'अहम्' की चेतना उदय को प्राप्त होती है, तभी से जीव का सच्चा जाग्रत् जीवन प्रारंभ होता है। यह जागृति मानस मे प्रवेश है। इससे ऊँची एक और भी जागृति होती है, जिसे आत्मा मे प्रवेश कहते है, पर वह बहुत ही ऊँची है। इस ऊँची जागृति का वर्णन आगे होगा। इस 'अहम्' के उदय होते समय ही बच्चे की बुद्धि जगती है। इसके पहले बच्चा जीता और जानता तो था, पर यह नहीं जानता था कि "मैं जानता हूँ"। इसी अहम् की जागृति के साथ-साथ पुरुषार्थ, दुःख और जन्म का समय आता है। जवाबदेही के बोझे सिर पर पड़ जाते हैं। बुद्धि के उदय के साथ विकास तो होता है, पर यही बुद्धि यदि प्रवृत्ति-मानस की पाशविक वृत्तियो की दास बन गई, तो यह बुद्धि उन पाशविक वृत्तियो की शक्ति को और भी बहुत अधिक बढ़ा देती है। मनुष्य यदि चाहे, तो वह पशु से भी अधिक नीचता को पहुँच सकता है। वह इतनी नीचता को पहुँच जाय कि जिसका पशु को ख़याल भी न हो। योगी लोग जानते है कि बुद्धि

द्वारा पाशविक वृत्तियों को सहायता पहुँचाने का बड़ा ही भयं-कर परिणाम होता है। जीव इतना नीचे गिर जाता है कि फिर ऊपर आना बड़ा ही दुःसाध्य हो जाता है।

मानसिक भूमिकाओ का वर्णन यहाँ तक समाप्त हुआ। इन भूमिकाओ का कुछ-कुछ ज्ञान साधारण मनुष्यो को और कुछ अधिक ज्ञान मनोवैज्ञानिको को होता है। परंतु आगे जिन आत्मिक भूमिकाओ के वर्णन की चेष्टा की जाती है, वहाँ तक हम लोगो की पहुँच ही नहीं हो सकती, जब तक आत्मा का विकास न हो। उन भूमिकाओ का वर्णन करना जन्म के अंधे के सामने प्रकाश का वर्णन करना है। तो भी इस वर्णन मे कुछ-न-कुछ संस्कार हो जायगा, कुछ भावना हो ही जायगी। इन गूढ़ बातो के जानने की ओर झुकाव और अधिक प्रकाश की चाहना होना ही इस बात का द्योतक है कि आत्मिक मानस हमारी चेतना मे आया चाहता है। यद्यपि संभव है, उसके आने मे अधिक काल लगे, पर तो भी उसका प्रभाव और उसकी सहायता पहुँच गई है। केवल इतना ही जानना इस समय अलम् होगा कि आत्मा है। इतने ही ज्ञान से आत्मिक मानस के विषय मे यह समझने का सहारा मिलेगा कि इसी आत्मिक मानस द्वारा आत्मा बुद्धि मे प्रकाश डालता है।

(६) आत्मिक मानस

इस आत्मिक मानस को कुछ लोग बुद्धि के ऊपर का

मानस कहते हैं। यद्यपि इस आत्मिक मानस का अस्तित्व बहुत थोड़े ही मनुष्यो पर हुआ है, पर तो भी ऐसे बहुत-से मनुष्य हैं, जो इस बात से चैतन्य हो रहे हैं कि भीतर कोई ऐसी उच्च वस्तु है, जो उन्हे उच्च या श्रेष्ठ विचारो, अभिलाषाओ, उत्साहो और कीर्तियो की ओर ले जा रही है। ऐसे मनुष्यो की संख्या तो बहुत अधिक है, जिन्हे आत्मा के धुंधले प्रकाश की धुंधली किरणें प्राप्त हो रही हैं, और उनके अज्ञात ही मे उन पर प्रभाव डाल रही हैं। मनुष्य के मन मे जितनी भली, श्रेष्ठ और बड़ी बातें आती हैं, वे इसी आत्मिक मन के प्रकाश हैं। जिन बातो की श्रेष्ठता का सच्ची ईश्वर-भक्ति, दया, मनुष्यत्व, न्याय, निस्स्वार्थ प्रेम, क्षमा, सहानुभूति आदि से संबंध है, वे सब इसी आत्मिक मानस के प्रभाव से हैं। इसी पथ से ईश्वर-भक्ति और मानव-सहानुभूति उसे प्राप्त हुई है। ज्यो-ज्यो यह मानस अधिक-अधिक विकसता है, त्यो-त्यो वह परमेश्वर के नित्य अस्तित्व का अधिक-अधिक अनुभव करता है, और साथ-ही-साथ मनुष्यो मे परस्पर अधिक घनिष्ठ संबंध पाता है। ये बातें प्रवृत्ति-मानस और बुद्धि से नहीं प्राप्त होती। आत्मिक मन बुद्धि का विरोध नही करता, किंतु बुद्धि से बहुत ऊँचे जाता है, जहाँ बुद्धि नही पहुँच सकती। बुद्धि नीरस होती है, और आत्मिक मन उच्च भावनाओं के कारण सरस होता है। मनुष्य बुद्धि द्वारा ईश्वर को नहीं देखता;

वह आत्मिक मन द्वारा ईश्वर के अस्तित्व का पता पाता है, और बुद्धि उस पते के ऊपर अपना प्रमाण और तर्क जोड़ती है। ज्यो-ज्यो मनुष्य मे आत्मिक मन का विकास होता है, त्यो-त्यो उसकी सहानुभूति अन्य मनुष्यो के प्रति बढ़ती जाती है। दूसरो का दुःख देखकर उसे पीड़ा पहुँचती है, तब वह उसके निवारण मे यत्नवान् होता है। साधारण मनुष्य की अहम् चेतना की द्योतक बुद्धि है। इस 'अहम्' के नीचे तो प्रवृत्ति-मानस है, जो 'अहम्' तक अपनी पुरानी वासनाओ, आदतो और नीच तथा पाशविक वृत्तियो को भेजता रहता है। इस 'अहम्' के ऊपर आत्मिक मन है, जो बुद्धि मे अपनी श्रेष्ठ ज्योति डालता रहता है, और 'अहम्' की चेतना को अपनी ओर ऊपर खीचता है, जिससे मनुष्य का विकास हो, और नीच पाशविक वृत्तियो का दमन। इसी आत्मिक मन से वह प्रतिभा प्राप्त होती है, जिसका उच्च कवि, लेखक, उपदेशक और वक्ता आदि द्योतन करते हैं। इस आत्मिक मन के द्वारा कुछ उच्च आध्यात्मिक शक्तियाँ भी प्राप्त होती है, परंतु ये शक्तियाँ तब तक नही विकसती, जब तक मनुष्य का अप-स्वार्थ नहीं छूट जाता। ज्यो-ज्यो आत्मिक मन का विकास होता है, त्यो-त्यो आत्मा के ऊपर विश्वास होता जाता है। और, ज्यो-ज्यो यह विश्वास बढ़ता है, त्यो-त्यो प्रकाश के और भी अधिक झोके आते हैं।

(७) आत्मा

अब इसका वर्णन कैसे किया जाय, जिसे उन्नत-से-उन्नत मनुष्य भी बहुत ही धुँधला समझ सकते है। परिमित जीव अनंत को कैसे समझ और वर्णन कर सके। यह वही पदार्थ है, जिसके कारण मनुष्य का विकास होता है। जब मनुष्य आत्मा का अनुभव करने लगेगा, तो वह इतना उच्च हो जायगा कि उसकी कल्पना करना भी कठिन है। मनुष्य को इस पदवी से चढ़ते-चढ़ते देवता और महादेवता की पदवी तक पहुँचना होगा, तब कही वह आत्मा का पूरा अनुभव कर सकेगा। यह बात कभी-कभी होती है कि उसकी ओर से कुछ झलक आ जाय। ऐसे क्षणो मे अज्ञात महत् के साक्षात् से एक अद्भुत भाव हो जाता है। ऐसे क्षण धार्मिक विचार, किसी उच्च कविता के पाठ, किसी निराशा-जनक भारी विपत्ति के समय मे भी कभी-कभी आ जाते हैं। जिनको ऐसे क्षण प्राप्त हो जाते है, उनका ईश्वर के नित्यत्व मे अटल विश्वास हो जाता है। सारा विश्व अपना ही प्रतीत होता है। भले-बुरे सब अपने ही अंग प्रतीत होने लगते हैं। पूर्ण ज्ञान हो जाता है। अपने विषय में निश्चय हो जाता है कि हम सर्वदा से हैं, और सर्वदा रहेंगे। अमरत्व का अनुभव होता है। मन के कोर-कोर से भय पृथक् होकर झड़ पड़ता है, और निश्चय, श्रद्धा और विश्वास भर जाते है। सारे विश्व के प्रति प्रेम प्रवाहित हो जाता है। यह झलक जब आकर चली जाती है, तब वह

मनुष्य बिलकुल बदल जाता है। आनंद का भाव भर जाता है। ऐसी झलकों का पता पुराने आध्यात्मिको के लेखो, सब जातियो के उच्च कवियो की कविताओ, सब मज़हबो के पैगंबरो के उपदेशो से चलता है।

इन कथनो पर बहुतों को संदेह होगा, पर हम कहते है, आपकी सामर्थ्य के भीतर वे साधन है, जिनके द्वारा आप अपने जीव का विकास करके इन बातो का अनुभव कर सकते हैं।

स्थूल शरीर, लिंग-शरीर और प्राण के भासो को तो हम उनके वर्णन के साथ देते आए हैं; पर मानसिक और आध्यात्मिक भूमिकाओ के भासो अर्थात् निःसृत तेजो को हम यहाँ एकत्र ही सब वृत्तियों के साथ देते हैं। इनसे विदित होगा कि कैसे मानस के भास या निःसृत तेज में कौन-सा रंग होता है। इन भासों को साधारण दृष्टि नहीं देख सकती। इन्हे देखने के लिये विकसित दृष्टि चाहिए।

काला—ईर्पा, द्वेप, प्रतिशोध-वृत्ति और ऐसी ही वृतियो का द्योतन करता है।

भूरा, चमकोली किस्म का—स्वार्थपरता का द्योतक है।

भूरा, काले रंग का—रंज और शोक का द्योतक है।

हरा, मैलो किस्म का—मत्सर का द्योतक है। यदि मत्सर मे अधिक क्रोध मिला होगा, तो हरी भूमिका पर लाल छोटे दिखाई पड़ेंगे।

हरा, स्लेट के रंग का—दगाबाजी का द्योतक है।

हरा, चमकीली क़िस्म का—क्षमा, चातुरी, मुरौव्वत और परिमाजित धोखेबाजी का द्योतक है।

लाल, काला मिश्रित—भोग और पाशविक वृत्तियो का द्योतक है।

लाल, विजली की चिनगारियो की भाँति—क्रोध का द्योतक है।

हलका लाल (Crimson)—प्रेम का द्योतक है। उच्च प्रेम गुलाबी रंग का होता है।

बादामी, लाली लिए—लोभ का द्योतक है।

नारंगी, चमकीले रंग का—अभिमान का द्योतक है।

पीला, बुद्धि का द्योतक है।

नीला, गहरा—मजहबी विचारो अर्थात् भक्ति का द्योतक है।

नीला—हलका, स्वच्छ और चमकीला—आत्मिकता का द्योतक है।

स्वच्छ उज्ज्वल (अनिर्वचनीय और अगोचर)—आत्मा का द्योतक है।

जीवन के विषय मे प्रतिभाशाली योगियो का कथन भी संक्षेप मे समाप्त हो चुका। साधारण, वैज्ञानिक और योगियो की दृष्टि से यही जीवन है।

सातवाँ अध्याय

मरण

ऊपर वर्णन किए हुए सब अंगों को सम्मिलित करके मनुष्य के पूरे जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तो मनुष्य के जीवन को एक पेचीदा और अद्भुत जीवन पाते हैं। इसमें दो प्रधान अंग हैं—एक तो अपनी सब कारीगरियों को लिए हुए यह शरीर और दूसरे विशाल शक्तियों के बीज, संभावनाओं, विकासोन्मुख उच्च भावनाओं को लिए हुए अद्भुत मानस है। जीवन के इन दोनों अंगों में भी मानसिक अंग प्रधान दिखाई देता है। देह इस मानसिक अंग के आधार के लिये केवल साधन-मात्र दिखाई देता है। मानस अपनी विशाल शक्तियों के बीज को धारण किए हुए और महान् उद्देशों को धुँधले रूप से अपनी दृष्टि के सम्मुख रखते हुए विकासोन्मुख होकर ऊर्ध्व गति की ओर पुरुषार्थ कर रहा है। अभी इसका पुरुषार्थ प्रारंभ हुआ है। अभी इसके उद्देश के अनुसार विकास करने का सारा कार्य शेष है। इसी समय में मरण हो जाता है। मरणोन्मुख मनुष्य के शरीर की शक्तियाँ शनैः-शनैः या शीघ्रता से क्षीण होने लगती हैं, दैहिक क्रियाएँ निर्बल और धीमी होने लगती हैं, प्रफुल्ल रूप में भी

परिवर्तन आने लगता है, और बस सारी चेष्टा बंद हो जाती है, तथा मनुष्य मरा हुआ कहा जाता है। अब उस मानस का वह आधार छूटा। अब वह मानस उस शरीर में होकर कोई कार्य न करेगा, न अपने हित-मित्रों से इस शरीर द्वारा कुछ कह-सुन या व्यवहार रख सकेगा। यह व्यवहार सर्वदा के लिये बंद हुआ। इसी निराशा से घर-परिवारवाले एक अनभ्यस्त घटना को पाकर व्याकुल हो रोने, पीटने और शोक करने लगते हैं।

उस देह की यह दशा होती है कि ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता है, त्यो-त्यो देह का आकार कुरूप होता जाता है। शरीर के भीतर की सभी क्रियाएँ, श्वसन, वेदन, प्रेरणा, रुधिर-संचालन और पाचन आदि बंद हो गई हैं। कारखाने से इंजीनियर चला गया, कारखाना सूना पड़ा है। फिर वह शरीर बोलने, कहने और सुननेवाला नहीं है। ऐसी दशा को प्राप्त हो गया, जिस दशा का हमे इन इंद्रियो और बुद्धि द्वारा कुछ भी ज्ञान नहीं। ज्ञात से अज्ञात में विलीन हो गया। अब वह शरीर देह न रहकर साँप की छोड़ी हुई केंचुल के समान निर्जीव हो गया। महान् और भयंकर परिवर्तन! इस जीवन की कहानी खतम हो गई। काल पाकर यह शव भी बिगड़ने लगता है। लोग इस शव को निरर्थक और इस बिगड़ी हुई दशा मे जीवित लोगो के लिये हानिकारक समझकर तथा इसकी बिगड़ती हुई दशा देखना अपने को असह्य

समझकर इसे अन्यत्र कर देते हैं। कोई इसे जलाकर शीघ्र पंचत्व मे मिला देता है, और कोई गाड़ या जल-प्रवाह करके इसे आँख से ओट करता है। साधारण दृष्टि में यही मरण है। हम लोग यद्यपि अपने विज्ञान द्वारा जानते हैं कि इस संसार का कोई पदार्थ नाश नहीं होता; छोटा परमाणु भी अभाव को प्राप्त नही होता; परंतु अपनी दृष्टि के सम्मुख उस चिर अभ्यस्त रूप, उस चिर अभ्यस्त समागम, उन चिर अभ्यस्त क्रियाओं को न देखकर यों ही उसका नाश मान लेते हैं। इसी नाश के मान लेने से हमारे हृदयो पर बड़ा धक्का और बड़ी चोट लगती है। इससे यह घटना और भी भयंकर प्रतीत होने लगती है।

परंतु भय और शोक की लहरें जब हमारे चित्त मे शांत होने लगती हैं, और मन कुछ-कुछ स्थिर होने लगता है, तब हम विचार करते है, तो हमें निश्चय जान पड़ता है कि शरीर का नाश नहीं होता। शरीर के बनानेवाले देहाणु, यदि शव जलाया नही गया है, तो उस केंद्रस्थ प्रवृत्ति-मानस के शासन से छूट जाते हैं। इन्हे स्वराज्य मिल जाता है। उस शासन से छूटने पर कुछ देहाणु तो पृथक्-पृथक् और छिन्न-भिन्न होने लगते है, जिस दशा को हम शव का सड़ना कहते हैं। जिस शक्ति ने इन देहाणुओं को शासन मे धारण किया था, वह तो हट गई, इसलिये देहाणु अपना-अपना मार्ग पकड़ने और नए संयोगो को कर लेने के लिये छुट्टी पा गए। कुछ

देहाणु तो कीड़े-मकोड़े और अन्य जंतुओं के शरीर में जाकर उनके अंग बन जाते हैं। कुछ खाद के रूप में पौधों की खूराक होकर उनका अंग बनते और अंत में जंतुओं के शरीर में फिर चरे और खाए जाने पर पहुँचते हैं, तथा कुछ पौधों ही के शरीर में रह जाते है। कुछ पृथ्वी में कुछ काल तक पड़े रहते हैं, परंतु परमाणु का जीवन अनंत और अनवरत परिवर्तन का है।

इस प्रकार हम देखते है, तो शरीर के बनानेवाले पर-माणुओं का नाश नहीं होता। ये छिन्न-भिन्न और परिवर्तित दशा में हो जाते है। इनका केवल रूपांतर होता है। सृष्टि मे नाश है ही नहीं। परिवर्तन-ही-परिवर्तन है। पदार्थ सब बने हुए रहते हैं, पर रूप और दशा का परिवर्तन किया करते है। एक समय कुछ परमाणु परस्पर मिलकर एक संयोग बांधते है, फिर दूसरे समय मे उस संयोग को बिगाड़कर दूसरा संयोग बाँध लेते हैं। इस दृश्य जगत् का ऐसा ही नियम देखने मे आता है। इनके नाश का होना न तो क़यास मे आता, न विज्ञान से प्रमाणित होता और न साधारण दृष्टि से देखने मे आता है। इसी परिवर्तन को हम मोटी बातचीत में नाश मानकर कहते और सुनते है। वास्तव मे यह नाश नहीं, परिवर्तन ही है।

प्रतिभाशाली योगी लोग जिस लिंग-शरीर या आकाश-शरीर का कथन करते हैं, उसके विषय मे भी वे ही लोग

कहते है कि मनुष्य की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् तक यह लिंग-शरीर बना रहता है, और किसी-किसी दशा मे कुछ जीवित मनुष्यो की दृष्टि मे आ जाता है और प्रेत कहा जाता है। इस लिग-शरीर को भी कुछ काल के उपरांत जीव छोड़ देता है। तब यह शरीर भी सूक्ष्म द्रव्यो से बने हुए शव की भॉति निश्चेष्ट रह जाता है। इस शव-दशा मे न तो उसमे जीवन है, न चेतना। वह सूक्ष्म तत्वो का एक बादल का टुकड़ा मृत मनुष्य के अनुरूप पाया जाता है। यह केवल सूक्ष्म खोखला और केचुली है। खोखली केंचुल के अतिरिक्त और कुछ नही है। मरता हुआ मनुष्य कभी-कभी इस लिंग-शरीर को अपने स्थूल शरीर से बाहर प्रेरित कर देता है। ऐसे समयो में यह उस मनुष्य के प्रिय मित्रो और संबंधियो द्वारा कभी-कभी देखा जाता है। ऐसी बहुत-सी घटनाऍ लिखित चली आती हैं। बहुत-से मनुष्यो को ऐसी घटनाओ का अनुभव है।

योगी लोग अपनी विकसित दृष्टि द्वारा देखते है कि जब किसी स्थूल शरीर के मरने का समय आता है, तब यह लिंग-शरीर स्थूल शरीर से निकलता हुआ दिखई देता है। यह स्थूल देह से एक बहुत ही पतले धागे से जुटा रहता है, और उसी के ऊपर मॅडराया करता है। ज्यो ही वह पतला धागा टूटा कि वह स्थूल शरीर मरा। लिंग-शरीर स्थूल से पृथक् होने पर भी कुछ काल तक जीवित रहता है, पर जैसे इसके

निकल जाने से स्थूल शरीर मर गया, वैसे ही इसमें से भी जीव कुछ काल पर निकल जाता है, और यह शरीर भी मर जाता है। जैसे स्थूल शरीर केंचुल की भाँति छोड़ दिया गया था, वैसे ही सूक्ष्म तत्त्वों से बना यह लिंग-शरीर भी जीव द्वारा त्यक्त हो जाता है। जैसे स्थूल शरीर का शव सड़-गलकर छिन्न-भिन्न हो गया, वैसे ही यह भी योगियो और विकसित दृष्टि-वालो द्वारा छिन्न-भिन्न होता देखा गया है।

यही दशा प्राणमय कोष की भी होती है। जब स्थूल शरीर से जीव निकल जाता है, तब यह प्राण जीव के शासन मे न रहने के कारण व्यक्तिगत देहाणुओ और देहाणु-समूहो के शासन मे रह जाता है। और, ज्यों-ज्यो स्थूल शरीर सड़ता, गलता और पंचत्व मे मिलता जाता है, त्यो-त्यो प्रत्येक परमाणु नए संयोगो के बनाने-भर के प्राण लेता जाता है, और शेष प्राण भंडार मे जा मिलता है, जहाँ से आया था।

ये ही स्थूल और लिंग-शरीर तथा प्राणमय कोष है। ये ही तीनो अत्यंत भौतिक हैं, और जिन परमाणुओ से ये संघटित हुए हैं, वे यद्यपि अविनाशी हैं और सर्वदा अनगिनत रूप और दशा बदला करते हैं, तो भी ये जीव द्वारा परित्यक्त कर दिए जाते हैं, केंचुल की भाँति छोड़ दिए जाते है, या पुराने वस्त्र की तरह उतार दिए जाते हैं।

आठवाँ अध्याय

मृत्यु के पश्चात् मानस या जीव की दशा

स्थूल कोशो की मृत्यु के पश्चात् जो दशा हुई, उसको हम लोगो ने विचार-दृष्टि से देख लिया।

अब उस मानस को विचार-दृष्टि मे देखना है, जो जीवित दशा में शरीर के देहाणुओ पर किसी उद्देश से ऐसी चैतन्य प्रेरणा करता था, जो बाह्य पदार्थों से संघटित वेदनाओं का अनुभव करता था, जो इन्हीं वेदनाओ का अनुभव करता था, जो इन्हीं वेदनाओ से अपनी एक ज्ञान की दुनिया बना लेता था; जो समझ, भावना, अनुभावना, कल्पना, स्मरण आदि क्रियाएँ करता था; जो प्रत्येक क्रियाओ मे सुख-दुःख का अनुभव करता था; जो प्रत्येक कियाओ के साथ उचित और अनुचित का विवेक करता था; जो प्रत्येक कर्म के लिये अपने को उत्तरदायी समझता था; जिसमे अपूर्ण अभिला-षाओ की पूर्ति की आशा भरी थी; जो अपने से ऊपरवाली महच्छक्ति से अपना घनिष्ठ संबंध जोड़ता था, जो अपने नाश की कल्पना को असंभव समझता; जो उस महच्छक्ति का अपने को नित्य-संबंधी समझता था। वह विकसती हुई अध-खिली कली क्या हुई? क्या उसका नाश हो गया? क्या

छिन्न-भिन्न होते हुए शरीर के साथ वह भी छिन्न-भिन्न हो गई ?

किसी वस्तु का नाश होना तो हम लोगो के अंतःकरण मे बैठता नही. अभिमानिनी बुद्धि भी वस्तुओ के नाश को अस्वीकार करती है। हमारा विज्ञान भी कहता है कि नाश किसी वस्तु का होता नहीं। तो उस मानस या जीव के नाश की कल्पना कैसे की जाय ?

तब क्या वह छिन्न-भिन्न हो गया ? उसके परमाणु भी क्या तितर-बितर हो गए, जैसे शरीर और लिंग-शरीर तथा प्राण के परमाणु छितर-बितर हो गए ?

परमाणु तो उसी वस्तु या द्रव्य के छितर-बितर और छिन्न-भिन्न हुआ करते हैं, जो द्रव्य परमाणुओ से बने रहते है। मानस और जीव तो परमाणुओ से बने नहीं है। वे तो किसी अद्भुत पदार्थ, जिसे चेतना कहते है, उससे बने है। चेतना का छेदन, भेदन, खंडन और छिन्न-भिन्न होना संभव ही नहीं है, क्योकि यह परमाणुओ से नहीं बनी है। छिन्न-भिन्न उसी द्रव्य के परमाणुओ का होना संभव है, जिसका अस्तित्व देश और काल के आधार पर हो। मानस और जीव तथा चेतना और अस्तित्व देश, काल के आधार पर नही हैं, किंतु देश और काल का अस्तित्व अलबत्ता चेतना और मानस के आधार पर संभावित है। इसलिये जीव का छितर-बितर होना भी नहीं कहा जा सकता।

वैज्ञानिकों का कथन हो सकता है कि जब वह जीव अगोचर है, जब उसे हम अपने यंत्रो द्वारा ग्रहण-मान मे नही ला सकते, तो अब उसका अभाव ही समझना चाहिए। इस बात को वे वैज्ञानिक कह सकते है, जिन्होने अपने अंतः-करण को उठाकर अपने वैज्ञानिक यंत्रो मे रख दिया है। वे लोग, जो अपने अंतःकरण को उसके स्वाभाविक स्थान मानस ही मे रक्खे है, कभी नही मान सकते कि अगोचर और अयंत्रचर होने के कारण जीव का अभाव हो गया। जब मनुष्य जीवित था, तब भी तो वैज्ञानिको के यंत्र उसके मानस या चेतनता अथवा जीव को अपने ग्रहण और मान मे नही ला सके थे, तो भी वह था, और उसके अस्तित्व का पूरा अनुभव था। जैसे उस समय उनके यंत्रो के ग्रहण और मान मे न आ सकने पर भी उसका अस्तित्व था, वैसे ही इंद्रियो और यंत्रो के ग्रहण और मान मे अब भी न आ सकने पर उसका अस्तित्व हो सकता है, यदि किसी प्रकार अनुभव मे आ सके।

कहा जा सकता है कि शरीर को जीवित दशा का वह स्फुरण था, शारीरिक जीवन-क्रियाओ की वह दशा-मात्र थी। जीवित दशा और शारीरिक क्रियाओ के अभाव हो जाने से उसका भी शरीर के साथ संबंध न रहने के कारण अभाव हो गया। इस कथन को अंतःकरण स्वीकार नही करता। वह मानस जो जीवित दशा में इतनी आशाएँ लगाए

था, जो स्वप्न-दशा में स्थूल शरीर को सोता हुआ छोड़कर आप न-जाने कहाँ कहाँ की सैर करता था, जो अध्ययन और गूढ़ प्रश्नो के चिंतन मे इस शरीर से बहुत ही कम संबंध रखकर, यहाँ तक कि कभी-कभी इससे बिलकुल बेसुध होकर अपने अध्ययन और चितन के विषय मे लग-कर अपने को पृथक् ही प्रकट करता था, और शरीर से पृथक् ही अपना कार्य करता था, क्या उसका अभाव हो सकता है ? कभी नहं। बुद्धि के तर्क एक काल मे झूठे प्रमाणित हो सकते है, क्योंकि ये अप्रतिष्ठ है, पर अंतःकरण के आदेश कभी झूठे नहीं हो सकते। जीवित मे वही अंतः-करण अपने नाश को असंभाव्य समझता है, अपने को अपने कर्मों का उत्तरदाता समझता है। यह समझ उसकी झूठ नही हो सकती। अपने कर्मों के दायित्व का विना चार्ज दिए, विना समझौता किए, विना बेबाक़ी किए दायित्व से इसका छुटकारा अभाव मे लय हो जाने के लिये कदापि नही हो सकता। अपना ही अंतःकरण अपने अभाव को असंभाव्य समझे, यह बात नही है, किंतु दूसरो का अंतः-करण भी जीव की अभाव दशा को मानना अस्वीकार करता है। मनुष्य के मर जाने पर भी उसके जीव के साथ लोग सहानुभूति करते है। लोगो का अंतःकरण उस जीव के अशरीरी अस्तित्व को स्वीकार करता है, तभी लोग उसके जीव के साथ सहानुभूति करते है। यदि लोगो का अंतः-

करण मृत शरीर के परमाणुओं की भाँति जीव को भी छिन्न-भिन्न समझता, तो लोग जैसे मृत शरीर को भुलवाकर उससे निस्संबंध हो जाते है, वैसे ही उसके जीव को भी भुलवाकर निस्संबंध हो जाते, पर लोगो का अंतःकरण प्रेरणा करता है कि मरे मनुष्य के साथ सहानुभूति रक्खो। इसी प्रेरणा के वशवर्ती होकर लोग उस जीव पर प्रेम, श्रद्धा और भक्ति रखते हैं। इस प्रेम, श्रद्धा और भक्ति का द्योतन श्राद्ध, मेमोरियल, मरे के लिये दुआ, प्रार्थना, पूजन, चढ़ावा आदि के रूप से होता है। कौन-सा देश है, कौन-सी जाति है, कौन-सी सभ्यता है, जिसमे इसका द्योतन न होता हो? सारे संसार के मनुष्यों के अंतःकरण से यह आभास निकल रहा है कि मनुष्य के मरने पर भी उसका जीव वर्तमान रहता है।

इस अंतःकरण के आभास को सत्यता के प्रमाण कभी-कभी प्रत्यक्ष भी किसी-किसी के अनुभव में आ जाते है। जीव कभी-कभी अपने प्यारे मनुष्य की प्रीति से आकर्षित होकर उससे भीतरी आलाप करते अनुभूत हुए हैं। भूत-प्रेतो की कथा और उनका कभी-कभी प्रकट हो जाना, किस देश, किस जाति और किस सभ्यता मे असंभव है।

अमेरिका आदि मे जो मिस्मेरिज्म, स्पिरिचुएलिज्म, सियाँसेज़ (भैरवी चक्रों) आदि की लीलाएँ देखने मे आती है, उनमे से भ्रम, नजरबंदी, और धोकेबाजियो को मिनहा

कर देने पर भी बहुत सी बातें ऐसी रह जाती हैं, जो मरने पर भी जीव के अस्तित्व को मानने की ओर विवश करती है।

भारतवर्ष, बर्मा, चीन, जापान, लंका आदि देश तो मरने पर जीव के अस्तित्व मे पूर्ण विश्वास रखते हैं, और उस श्रद्धा और भक्ति रखने को अपने मज़हब का एक अंग बना लिए है।

बहुत-से लड़के ऐसे उत्पन्न होते हैं, अथवा युवक ही ऐसो अवस्था को प्राप्त हो जाते है कि अपने पूर्व-जन्म की घटनाओ का ठीक-ठीक वृत्तांत कह देते हैं कि इनके कथन से उस स्थान पर की उस काल की घटनाओ का मिलान किया जाय, तो पूरा-पूरा मिल जाता है, जिससे प्रमाणित होता है कि मरने पर भी जीव अस्तित्व में रहता है, और दूसरा जन्म लेकर पीछे दूसरा शरीर भी धारण करता है। ये बाते तो साधारण मनुष्यो के अंतःकरण के आदेश, बुद्धि के तर्क और अनुमान तथा इंद्रियो के समक्ष आती हैं। और, इतनी ही बातें काफी हैं कि उन सब मनुष्यो को निश्चय करा दे कि मरने पर भी जीव का अस्तित्व रहता है, जो लोग इसको ख़ामख़ाह अस्वीकार करने के लिये कटिबद्ध नहीं हैं। पर जो लोग अंतःकरण की सूचनाओ से अपने कान मूँदे हैं, जो बुद्धि के ऐसे तर्कों को भी भ्रम कहते हैं, जो सारे संसार की पितृ-भक्ति को मिथ्या-विश्वास कहते हैं, जो मनुष्यो के प्रत्यक्ष अनुभव को इंद्रजाल कहकर टाल

देते हैं और हठ कर यही कहते है कि मरने पर जीव का अभाव उन्हे कोई नहीं समझा सकता।

किसी मनुष्य से किसी ज्योतिषी ने कहा कि अमुक दिन तुम मर जाओगे। इस कथन पर उस मनुष्य को विश्वास हो गया। वह दिन आया और बीत गया। यद्यपि वह मनुष्य मरा नहीं, पर ज्योतिषी के कथन मे अपने दृढ़ विश्वास के कारण उसने अपने को मरा मान लिया। प्रत्यक्ष, अनुमान और अनुभव सब बातें तो प्रकट कर रही है कि मरण अभी नहीं हुआ है, पर वह अपने आग्रह के ऐनक से अपने को मरा ही हुआ समझता है। वैसे ही जिन मनुष्यो का आग्रह उनके अतःकरण, बुद्धि और अनुभव को इतना आवृत कर लिए है कि प्रत्यक्ष, अनुमान, अनुभव और अंतःकरण सबकी उपेक्षा कर बैठते है, उनसे विवश ही होना पड़ता है।

साधारण मनुष्यों ही के अंतःकरण की सूचनाओ, बुद्धि के तर्क और अनुभवो से पूरा प्रमाणित हो जाता है कि मरण के उपरांत भी जीव वर्तमान रहता है। अब अगले अध्याय मे यह देखा जायगा कि प्रतिभाशाली और योगी लोग इस विषय मे अपने विकसित ज्ञान द्वारा अनुभव प्राप्त करके क्या कहते हैं।

नवाँ अध्याय

प्रतिभाशालियों और योगियों के अनुभव

जब अपने लिंग-शरीर से आवृत जीव शनैः-शनैः स्थूल शरीर से निकलने लगता है, तब उस मनुष्य का सारा जीवन-चरित्र, बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक उसकी मानसिक दृष्टि के सम्मुख गुज़रने लगता है। स्मृति अपनी गुप्त बातो को प्रकट कर देती है, और मन के सम्मुख चित्र-पर-चित्र बड़ी शीघ्रता से आने लगता है तथा बहुत-सी बातें उस प्रस्थानोन्मुख जीव को स्पष्ट हो जाती है। बहुत बातो का कारण प्रकट हो जाता है। जीव सब बातो के अभिप्राय को समझने लगता है। अर्थात् वह अपने अब तक के पूर्ण जीवन को पूर्णतया देखता है, क्योंकि वह उस समग्र को एक साथ ही देखता है। यह मरणोन्मुख मनुष्य को स्पष्ट स्वप्न की भाँति दिखाई देता है, परंतु यह गहरा चिह्न छोड़ जाता है। जीव पीछे इन स्मृतियो को फिर-फिर उभाड़-उभाड़कर इनका व्यवहार करता है। योगी लोग सर्वदा से कहते आए हैं कि मरते हुए मनुष्य के हित और मित्रो को उसके पास खामोशी और शांति रखनी चाहिए, जिससे विरोधी भावनाओ और चित्त के फेरनेवाले शब्दो

द्वारा उसका उद्वेजन न हो। जीव को चैन और शांति से अपना रास्ता लेने देना चाहिए। जो लोग उसके पास हों, वे अपनी इच्छाओं और शब्दो से उसे रोकें नहीं।

इसी तरह जीव शरीर से निकल जाता है। कहाँ जाता है? यहाँ पर इस बात को जान लेना चाहिए कि जीव की भविष्य दशा जो दूसरे जन्म के धारण करने के पहले बीतती है, उसका संबंध स्थान और देश से नहीं है। वह अवस्थाओ का विषय है, देश का विषय नहीं। अस्तित्व के लिये अनगिनत स्थान हैं, और सब एक दूसरे मे होकर वर्तते हैं, जिससे एक ही स्थान बहुत-सी चेतनाओ के जीवन को भिन्न-भिन्न अनेकों भूमिकाओ (लोकों) मे धारण कर सकता है। जो जीव निचली भूमिकाओ मे जीते है, वे वहाँ ही के उच्च जीवो के अस्तित्व और वर्तमानता से अनभिज्ञ रहते है। इसलिये स्थान की भावना को इस समय अपने चित्त से निकाल बाहर कर देना चाहिए। अब सब मामला अवस्थाओ और भूमिकाओ (अर्थात् लोको) का है।

ये जीव शरीर से निकल जाने के पश्चात्, यदि हित-मित्रो की भावनाओ और पुकारो से छेड़े न जायँ (यह छेड़-छाड़ बहुत शोक करने, मृत मनुष्य की चाहना करने आदि से होती है), तो वे अर्ध-चेतनावस्था मे पड़ जाते हैं। यह अर्ध-चेतन अवस्था बड़ी आनंददायिनी, शांति और सुख की अवस्था होती है। यह जीव की स्वप्न-दशा है।

ऐसी दशा कुछ काल तक रहती है; भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की भिन्न-भिन्न काल तक रहती है, जैसे आगे चलकर वर्णन किया जायगा। तब लिंग-शरीर जीव से झड़ पड़ता है, और मानस-मंडल मे दूर उड़ जाता है। फिर मानस के नीच आवरण जो मानस के नीच अंशो को आवृत किए रहते है, क्रमशः गलने और झड़ने लगते हैं। अब जीव अपने उच्च-तम मानसिक अंशो के साथ रह जाता है।

जो मनुष्य अभी बहुत नीच ही विकास का होता है और इसलिये पाशविक प्रवृत्ति की अधिक मात्रा धारण किए रहता है, वह अपने मानसिक शरीर की बहुत थोडी ही मैल छोड़ता है, और शीघ्र ही अपनी उस उन्नत दशा को पहुँच जाता है, जिसे उसने अपने पार्थिव जीवन मे अर्जन किया था। जो मनुष्य उच्चता अर्जन किए रहता है, वह शनैः-शनैः अपने मानस-शरीर के बहुत अंशो को त्याग देता है, और अपने कमाए हुए उच्च भावो को छोड़कर सब नीच अंशो को त्याग देता है। जो लोग इन दोनो श्रेणियो के बीच के होते है, वे भी अपने विकास के अनुकूल थोड़े या बहुत मानसिक नीच अंशो को त्यागते है। जब झड़नेवाले अंतिम नीच अंश सब झड़ जाते है, तब वह जीव जगता है, और उस दशा को पहुँचता है, जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। यह बात देखने मे आयगी कि स्थूल मानसिकता और आत्मिक विकास का मनुष्य इस स्वप्न-दशा मे बहुत

थोड़े काल तक रहता है, क्योकि ऐसी दशा मे मानसिक केचुलियो का छोड़ना, सरल कार्य होता है, जिसमे कम समय लगता है। इसी प्रकार यह भी देखने मे आयगा कि जो मनुष्य उच्च श्रेणी के आत्मिक विकास को पहुँचा है, वह अधिक काल तक इस विश्राम की अवस्था मे रहेगा, क्योकि उसे बहुत कुछ त्यागना है, और मन की यह त्यक्त वृत्तियाँ गुलाब-सुमन की पंखड़ियों की भाँति एक-एक करके झड़ेंगी। बाहर ही से झड़ते-झड़ते भीतर की ओर चलेगी। प्रत्येक जीव तभी जगता है, जब उसकी कमाई के अनुसार झड़नेवाली सब नीचताएँ झड़ जाती है, और जब वह अपने विकास के अनुसार उच्चतम अवस्था को पहुँच जाता है। जिन लोगो ने इस गत पार्थिव जीवन मे अधिक आत्मिक विकास किया है, उनको बहुत-सी नीचताओ को छोड़ना होता है, और जो लोग भू-जीवन के अवसरो को चूके रहते हैं और वैसे ही मरते है, जैसे जन्मे थे, तो उन्हे बहुत कम नीचताएँ त्यागनी पडती है, और इसलिये ये बहुत थोड़े ही काल मे जग उठेगे। यहाँ पर इस बात को कह देना हम बहुत आवश्यक समझते है कि विश्राम-दशा मे प्रवेश करने पर तथा पूर्ण विश्राम मे भूमि पर के मनुष्य बहुत बाधा पहुँचा सकते है। जिस जीव को भूमि पर के मनुष्यो को कुछ जताना होता है, अथवा जो भूमिस्थ मनुष्यो के दुःखो मे दुःखित होता है, विशेष-

करके जब भूमिस्थ मनुष्य उसके लिये विलाप या चाहना करते हैं, वह अपने ऊपर आती हुई विश्राम-निद्रा को टालता है और भूमि पर जाने के लिये बड़ा उद्योग करता है। ऐसे ही भूमिस्थ लोगों को पुकार उसकी सुख-निद्रा में भी बाधा पहुंचाती हैं, और यह जग-जगकर इनकी पुकारों का उत्तर दिया चाहता है। इस प्रकार उसके विकास मे बाधा पड़ती है। ऐसे विलापो और ऐसी चाहनाओं से हमारे प्रिय मनुष्यो को बड़ी पीड़ा और बेचैनी होती है, यदि वे अपने जीवन-काल ही मे विराग न उत्पन्न कर लिए हो। योगी लोग ऐसे जीवो को भी जानते है, जो बरसो तक निद्रा मे न गए, और अपने प्यारे भूमिस्थ मनुष्यो की पुकार सुन-सुनकर उनके पास रहा किए। इस क्रिया से मृत और जीवित दोनो मनुष्यों को कष्ट के सिवा और लाभ कुछ नहीं होता। हमे उचित है कि मृत मनुष्यो को स्वच्छंद विश्राम और विकास करने का अवसर दे, ताकि वे सोवे और विश्राम करे, तथा अपने परिवर्तन की प्रतीक्षा करे। बार-बार की पुकार से जगने-सोने मे उन्हे बार-बार की मृत्यु का अनुभव करना पड़ता है। जीव की निद्रा और उसके विश्राम का यह समय बच्चे की गर्भ-स्थिति को दशा के समान है। बच्चा गर्भ मे सोता है कि जीवन और शक्ति मे जगे।

जागृति की अवस्था का वर्णन करने के पहले हमे आवश्यक जान पड़ता है कि यह जता दें कि केवल उन्ही मनुष्यों के

जीव सुख-निद्रा मे तुरंत जाते हैं, जो छेड़े न जायँ, और जो स्वाभाविक मृत्यु से मरे है। जो दुर्घटना मे पड़कर अकाल-मृत्यु से मरते या वध किए जाते हैं, अर्थात् जो अकस्मात् शरीर-त्याग कर निकल पड़ते है, वे अपने को जागते हुए और पूर्ण मानसिक शक्तियो-सहित पाते है। वे प्रायः नहीं जानते हैं कि उनकी मृत्यु हो गई है, और यह नहीं समझते कि उन्हे क्या हो गया है। थोड़े काल तक अपने पार्थिव जीवन की सारी चेतना रखते हैं, और उनके गिर्द जो घटनाएँ होती है, उन्हे देखते और सुनते हैं। यह सब बातें वे अपने लिंग-शरीर की इंद्रियो द्वारा करते है। वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते कि स्थूल शरीर को छोड़ दिए हैं, इसलिये वे बहुत घबराते हैं। उनका भाग्य अत्यंत दुःखदायी होता, यदि वे और सहायक छाया-पुरुषो की सहायता से निद्रा में न भेजे जाते। ये छाया-पुरुष उच्च भूमिकाओ या लोको के जीव हैं और इस जीव के पास एकत्र हो आते हैं तथा बड़ी कोमलता से इसे इसको वास्तविक दशा समझा देते हैं। इसको सलाह, धैर्य देते है और इसकी खबरगीरी करते है। अंत मे यह जीव भी थककर उसी प्रकार सो जाता है, जैसे रोता हुआ बच्चा थककर सो जाता है। ये सहायक अपने कर्तव्य मे कभी नहीं चूकते हैं। और, जो कोई अकस्मात् देह-त्याग करता है, चाहे वह भला हो या बुरा, वह इनके द्वारा त्यक्त नहीं होता, क्योंकि

ये सहायक लोग जानते है कि सभी ईश्वर के बच्चे और हमारे भाई-बहन हैं। जब कभी भारी दुर्घटना होती है या बड़ा युद्ध होता है और तत्काल सहायता और परामर्श की आवश्यकता होती है, तो आत्मिक विकास के उच्च सोपानो की उच्च चेतनाएँ भी अपने उच्च लोको से मनुष्य-रूप मे उतरतीं और धैर्य तथा ज्ञान का लाभ पहुँचाती हैं। यह बात केवल सभ्य ही देशो मे नहीं होती, किंतु दुनिया के सब भागो मे होती है, क्योंकि सभी संबंधी है। बहुत-से जीव जो आत्मिक विकास की उच्च कक्षा मे पहुँचे है, और जो अपनी जाति की श्रेणी की अपेक्षा बहुत ऊपर चढ़ गए है, और जिन लोगो ने उच्च लोको की बहुकालीन स्थिति को कमाया है, वे भी इन और ऐसे कामो मे अपने को लगाया करते है तथा अपने कम भाग्यवान भाइयो की सहायता के लिये अपने अर्जित सुख का त्याग कर देते हैं। अकाल-मृत्युवाले भी शनैः-शनैः जीव की निद्रा में सो जाते है, और उनकी भी आवरणकारिणी केंचुली का उसी प्रकार झड़ना प्रारंभ होने लगता है, जैसे स्वाभाविक मृत्युवालो का होता है।

जब जीव आवरणकारी खोखलो को त्याग चुकता है और उस दशा को पहुँचता है, जिसके योग्य वह अपने का भू-जीवन मे बनाए रहता है, तब वह उस लोक मे पहुँचता है, जिसके योग्य होता है। हम ऊपर कह आए हैं कि ये लोक स्थान नहीं है, किंतु दशाएँ हैं। ये लोक एक

दूसरे में व्याप्त है। एक लोक का वासी जीव दूसरे लोक-वालों का कुछ ज्ञान नहीं रखता। एक लोक का जीव दूसरे में जा भी नहीं सकता। हाँ, यदि उच्च लोक का जीव चाहे, तो वह नीचे के लोकों का ज्ञान प्राप्त कर सकता और वहाँ पहुँच भी सकता है। परंतु नीचे के लोकवाला ऊपर के लोक का न तो ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है, न वहाँ पहुँच ही सकता है। इनके रोकने के लिये कोई द्वार पर पहरुआ नहीं रहता, क्योंकि दशा में द्वार होता ही नहीं है, बल्कि उसी कारण से, जिस कारण से मछली अपना निकास छोड़कर ऊपर आकाश में चिड़ियों की भाँति नहीं उड़ सकती। इसकी प्रकृति ही ऐसा नहीं करने देती। उच्च लोक का जीव इस मृत्यु-लोक में भी आकर किसी प्रेमी का आश्वासन कर सकता है, यदि वह मर्त्य ऐसे आश्वासन की आकांक्षा करे। जब जीवों का एक नियत श्रेणी तक विकास हो जाता है, तो वे शरीर से पृथक् होने पर उच्च जीवों के परामर्श को ग्रहण करने के इच्छुक हो जाया करते हैं, क्योंकि वे भू-जीवन के व्यग्र करनेवाले प्रभावों से पृथक् रहते हैं, और आत्मा की सहायता के लिये खुले रहते हैं।

ऊपर के लोक ने निचले लोक भरे हैं, उन अविकसित प्रकार के जीवों से, जैसे पृथ्वी पर पाए जाते हैं, भरे रहते हैं। वास्तव में वे इस भू-लोक से इतना घना संबंध रखते हैं और इसकी ओर इतना आकर्षित रहते हैं कि इसी

लोक के सदृश रहते हैं, और इसी लोक के कहे जा सकते है। ये जीव अपने भू-लोक के अधःपतन के दृश्यों के निकट ही रहते हैं, और अपने-से ही जीवों पर, जो मद्य आदि के नशे में रहते है, प्रभाव डालते हैं। वे तो अपना पुराना जीवन जीते ही हैं, साथ ही भू-लोक के जीवित मनुष्यों पर भी अपना बुरा प्रभाव डालते है। उच्च लोक और नीच लोक अनेकों है और अपने-अपने उपयुक्त जीवों द्वारा बसे हुए है। नीच लोकों के जीव नाना प्रकार के उत्पात् और शैता-नियत किया करते हैं। ऐसे जीव बहुत शीघ्र ही फिर पृथ्वी पर जन्म लेते है। जन्म लेते समय अपने ही अनुकूल माता-पिता के घर मे आकर्षित होते है। ऐसे जीव बहुत ही धीमी गति से उन्नति करते ह। प्रत्येक जीवन मे तनिक-सा आगे वढ़ते है। इन्हे वहुत शीघ्र-शीघ्र जन्म लेना पड़ता है। इनकी कामनाएँ भौतिक पदार्थों मे बहुत प्रबल होती हैं, इसीलिये शीघ्र-शीघ्र इन्हीं की ओर आकर्षित हुआ करते हैं। आत्मा का प्रभाव इनके ऊपर बहुत ही कम पड़ता है। परंतु सब कुछ-न-कुछ आगे ही को वढ़ते है।

उच्च लोकों के जीव ज्यों-ज्यों ऊपर विकास करते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी उन्नति की गति तीव्र होती जाती है। और जब भू लोक मे आते हैं, तब भी तीव्र वेग से उन्नति करते हैं। वहुत काल अंतर दे-देकर उनके जन्म होते है, और थोड़े ही जन्म होते हैं। उनकी आकांक्षाएँ और रुचियाँ

उच्च श्रेणी की हुआ करती है, इसलिये वे उच्च ही लोकों मे रहना अधिक पसंद करते हैं। उनके ऊपर आत्मा की किरणो का प्रकाश भी अधिक पड़ता है, इसलिये उनके विकास में और भी अधिक तीव्रता होती है। शताब्दियो तक ये उच्च ही लोको मे रहा करते है। किसी-किसी दशा मे जब वे साधारण मनुष्यो की अपेक्षा बहुत अधिक उन्नति कर जाते है, तब सहस्रो वर्ष ऊँचे ही लोको में रह जाते है, ताकि भू-लोक तब तक उन्नति करके उनके जन्म धारण करने योग्य बन जाय।

परंतु देर मे या सबेर जीवो को इस भू-लोक मे आकर नए अनुभवो के प्राप्त करने की आकांक्षा होती है। यहाँ आकर वे अपनी उच्च लोक से प्राप्त वृत्तियो को चरितार्थ करते हैं, और अपने मानस को दबी हुई कामनाओ की पूर्ति का अनुभव करते हैं, अथवा अपने किसी प्यारे के प्रेम से आकर्षित होते हैं। जब वे उच्च लोक से इस भू-लोक मे आने लगते हैं, तब वे वहाँ पहले जीव-निद्रा मे पड़ते हैं, फिर वहाँ मरकर इस भू-लोक पर स्थूल शरीर मे आते हैं। जन्म लेते ही जीव यहाँ पूरा-पूरा नहीं जग जाता; किंतु बचपन स्वप्न की दशा में रहता है। क्रमशः इसकी जागृति होती है, और जागृति के अनुसार चेतना बढ़ती जाती है। ज्यों-ज्यों चेतना बढ़ती जाती है, त्यों-त्यो उसी के अनुकूल उसका मस्तिष्क भी होता जाता है। कभी-कभी समय के पहले ही जागृति

हो जाती है; और हम बहुतों को बचपन ही मे बड़ी प्रतिभा का द्योतन करते पाते हैं; परंतु ऐसी दशाएँ नियम-विरुद्ध हैं, और अच्छी नही है।

जन्म धारण करने की अधिकांश तैयारियाँ अचेतन दशा मे होती हैं। ये तैयारियाँ ऊपर आत्मा के विकास और नीचे कामनाओ के आकर्षण से निर्णीत होती हैं। परंतु जब जीव नियमित विकास को पहुँच जाता है, तब वह जन्म-धारण-क्रिया से भी अभिज्ञ रहता है; वह अपने गत जीवनो का भी जानकार रहता है और आगे आनेवाले जन्म-धारण से बहुत कुछ कार्य अपनी रुचि के अनुसार करता है। ज्यो-ज्यो विकास की उच्च-उच्च श्रेणियाँ प्राप्त होती जाती है, त्यो-त्यो चेतना और स्वतंत्रता बढ़ती जाती है।

योगी लोग कहते हैं कि सात बड़े लोक हैं। इन्हीं को अशिक्षित हिंदू सात स्वर्ग कहा करते हैं। प्रत्येक बड़े लोक के अंतर्गत सात अधीनस्थ लोक हैं, और प्रत्येक अधीनस्थ लोक के अंतर्गत और भी सात छोटे-छोटे लोक हैं। इसी प्रकार होता चला गया है।

भू-लोक के निकटस्थ का लोक इसी से मिलता-जुलता है। ज्यो-ज्यो लोक ऊपर का होता गया है, त्यो-त्यो वहाँ की भावनाएँ उच्च होती गई हैं। बहुत उच्च लोकों के आनंद का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर है। इन उच्च लोको की बातें करने का हमे प्रयोजन ही क्या है? जब हम दो संख्याओं

का जोडना तक नहीं जानते, तो उच्च गणित की बाते करना निष्प्रयोजन है। पर इतना जान रखना चाहिए कि ये सब उच्च लोक हमारे ही लिये हैं—सब हमारे लिये हैं—हम पैत्रिक संपत्ति से वंचित नहीं हो सकते।

दसवाँ अध्याय

उपसंहार

यही मनुष्य का जीवन और मरण है। इन दोनो का एक-मात्र उद्देश आध्यत्मिक विकास है। इसी विकास के उद्देश से ऐसे जीवन और मरण हुआ करते हैं। कुछ लोगो की यह धारणा है कि मनुष्य मरने पर पशु आदि नीच योनियो मे भी जाता है। अन्य लोगो का यह विश्वास है कि मनुष्य का छुटकारा इस जीवन-मरण से कभी नही होता। यही चक्र सदा घूमा करता है, और एक नियत समय के पश्चात् यहाँ के मनुष्य अन्य ग्रहों मे चले जाते हैं, और फिर वहाँ जीवन-मरण-धारण किया करते हैं; फिर और भी उच्च ग्रहो मे जाते है। इसी प्रकार उनके जीवन-मरण का चक्र और ऊपर की गति दोनो हुआ करती हैं। यह गति अनंत है।

योगियो का कथन है कि ये बाते सत्य हैं, पर सच्चाई की एक अंग-मात्र हैं। समग्र सच्चाई नहीं है। यह बात सत्य है कि कोई-कोई पाशविक, स्वार्थी और पापी मनुष्य अपनी ही पाप-कामनाओ के कारण इस जीवन की अपेक्षा और भी नीच गति को प्राप्त हो जाते हैं। वे अपनी श्रेणी मे नहीं चल सकते, इसलिये एक दर्जा और नीचे उतार दिए जाते है।

परंतु जो जीव एक बार मनुष्य-योनि को प्राप्त हो गया, वह फिर कभी पशु-योनि को नही पतित हो सकता। चाहे जितना पाशविक वृत्ति का क्यो न हो, पर उसने मनुष्यता के थोड़े भी तो गुण प्राप्त कर लिए हैं। ये थोड़े गुण अब उससे पृथक् नहीं हो सकते। इन थोड़े गुणो को वह पशु-योनि में चरितार्थ नहीं कर सकता, इसलिये वह फिर मनुष्य ही होकर जन्मेगा।

इसी प्रकार यद्यपि मानव-जाति बहुत दिनो तक जन्म-मरण धारण करते-करते थोड़ा-थोडा विकास करेगी, पर जो लोग शीघ्रता से विकास करते हैं, वे उच्च लोको मे निवास करते हुए, मानव-जाति के अपने समान विकास की प्रतीक्षा करते हैं। अपनी जाति के अन्य अविकसित जीवो के साथ वे भी नही पिसा करते। विकसित मनुष्य को कभी अपनी इच्छा के प्रतिकूल जन्म नहीं धारण करना पड़ता। अविकसित मनुष्यो का जन्म भी इसी कारण होता है कि वे इस भू-लोक के पदार्थों की इच्छा रखते हैं। उनकी रुचियाँ और कामनाएँ ऐसी ही होती हैं, जो विना भू-लोक मे स्थूल शरीर धारण किए उनकी पूर्ति ही नहीं हो सकती। यद्यपि वे अपने आगामी जन्म के अभिज्ञ नहीं रहते, पर वे अपने को आप भू-लोक के आकर्षण मे डाल देते हैं और अपने अनुकूल बाह्य विधान मे जन्म धारण करते है।

जब मनुष्य इतना विकास कर लेता है कि अपने को आत्मिक प्रकाश के लिये खोल देता है, तब उसे निश्चित

हो जाना चाहिए कि उसका जन्म अवश्य उसके उच्च मानस की सम्मति ही से होगा। जो लोग अपने अंतःकरण मे वस्तुतः अनुभव करते है कि हम सर्वदा रहे हैं, और सर्वदा रहेगे, उनको निःशंक हो जाना चाहिए कि उनका आगे अचेतन पुनर्जन्म न होगा। वे अब उस चेतना को पहुँच गए हैं, जिससे वे अपने भविष्य-जन्म की सारी पद्धति को समझते रहेंगे। और, यदि शरीर-परिवर्तन करने की इच्छा होगी, तो उसी प्रकार शरीर-परिवर्तन करेंगे, जैसे मनुष्य अपने पुराने वस्त्रो का परिवर्तन करता है अथवा जैसे एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान मे-निवास स्वीकार करता है। अब वे विवश होकर जन्म धारण करने के बंधन से मुक्त हो गए हैं।

अब तनिक यह देखना है कि योगियो के आत्मिक विकास का अर्थ क्या है?

योग-शास्त्र यह उपदेश करता है कि मनुष्य सर्वदा रहा है, और सर्वदा रहेगा। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह निद्रा है, जिससे अगले दिन जगना पड़ेगा। मृत्यु मे चेतना का केवल क्षण-भंगुर लोप होता है। जीवन लगातार है। इसका उद्देश खिलना, विकसना और वृद्धि करना है। हम अब भी वैसे ही अनंत मे है, जैसे कभी हो सकते हैं। जीव ही प्रधान है। यह शरीर का आभूषण या पुछल्ला नही है। जीव शरीर से पृथक् भी वैसे ही रह सकता है, जैसे शरीर मे रह

सकता है। हाँ, यह ठीक है कि शरीर धारण ही करने से कोई-कोई अनुभव और ज्ञान प्राप्त होते है। हमे शरीर इसलिये मिला है कि हमे इसकी आवश्यकता है। जब हम एक निश्चित श्रेणी तक विकास कर लेंगे, तब हमे इस क़िस्म के शरीर को आवश्यकता न रहेगी, जिस क़िस्म की अब है। जीवन के और भी अधिक स्थूल लोकों मे इस शरीर से भी अधिक स्थूल शरीर को जीव धारण कर चुका है। उच्च लोको मे शरीर भी सूक्ष्म होता जायगा। यह जीव बहुत दिनो से विकास करता हुआ इस अवस्था को पहुँचा है, और आगे भी इसे बहुत विकास करना है, जिसे वह चाहे मंद गति से करे, चाहे तीव्र गति से।

यह आध्यात्मिक विकास किस उद्देश की ओर जा रहा है? इसका अर्थ क्या है? जीवन के नीचातिनीच रूप से लेकर उच्चातिउच्च रूप तक, सब पथ पर हैं। वह पथ किस स्थान या किस दशा की ओर जा रहा है? आइए, इन प्रश्नो के उत्तर देने का यत्न इस प्रकार किया जाय—कल्पना कीजिए, करोड़ो-अरबो वृत्त एक दूसरे के अंतर्गत हैं। प्रत्येक वृत्त जीवन की एक-एक कक्षा है। बाहरी वृत्त तो नीच और अत्यंत भौतिक है। ज्यो-ज्यो ये वृत्त केंद्र के निकट पहुँचते जाते हैं, त्यो-त्यो उच्च रूपो को धारण करते जाते हैं। फिर अधिक निकट पहुँचने पर मनुष्य देवता हो जाते हैं। और भी निकट, इससे भी निकट, अधिक निकट, उच्च-से-उच्च

जीवन होता चला जाता है। अब आगे की भावनाओं का मानव-हृदय कल्पना नहीं कर सकता। परंतु केंद्र में क्या ? सारे आध्यात्मिक शरीर का मस्तिष्क—परमात्मा—परमेश्वर। हम लोग उसी केंद्र की ओर जा रहे हैं।